[बीकानेर में स्वतन्त्रता संग्राम के प्रेरक बाबू मुक्ताप्रसाद द्वारा रचित एवं उनकी संस्था 'मित्र मंडल' द्वारा सन् 1923 में मंचित राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत नाटक]

सम्पादक

सत्यनारायण पारीक

प्रकाशक

भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान

रतनबिहारी पार्क, बीकानेर (राजस्थान)

धर्म विजय

[राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत नाटक]

नाटककार . (स्व.) बाबू मुक्ताप्रसाद सक्सेना

सम्पादक : सत्यनारायण पारीक

प्रकाशक :

भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान

रतनबिहारी पार्क, बीकानेर–334001 [राज.]

एकमात्र वितरक :

विकास प्रकाशन

4, चौधरी क्वार्टर्स, स्टेडियम रोड

बीकानेर-334001[राज.]

मुद्रक :

तिलोक प्रिंटिंग प्रेस

मोहता चौक, बीकानेर [राज]

प्रथम सस्करण : अगस्त 2000

मूल्य : एक सौ रुपए

DHARMA VIJAY [DRAMA] *BY BABU MUKTA PRASAD SAXENA*

EDITED BY : SATYANARAYAN PAREEK

PUBLISHER : VIKAS PRAKASHAN, BIKANER

FIRST EDITION : AUGUST 2000 PRICE : RS. 100/-

प्रकाशकीय

बीकानेर में स्वतंत्रता संग्राम के प्रेरक बाबू मुक्ताप्रसाद सक्सेना वकील के द्वारा रचित और उनके 'मित्र मंडल' द्वारा सन् 1923 में मंचित इस 'धर्म विजय' नाटक का उर्दू से लिप्यानुवाद व सम्पादन श्री सत्यनारायण पारीक ने किया था और संस्था की त्रैमासिक शोध पत्रिका 'वैचारिकी' (भाग 5 : अंक 2, 1989 से भाग 8 : अंक 2, 1992) में धारावाहिक रूप से इसे प्रकाशित किया गया था। इस नाटक के ऐतिहासिक महत्त्व को देखते हुए इसे राजस्थान के स्वर्ण जयंति वर्ष के अवसर पर पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का विचार आया और आज भारत के 54वें स्वतंत्रता दिवस की बेला में इसे पुस्तकाकार मे प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

स्व. बाबू मुक्ताप्रसाद ने बीकानेर में प्रारम्भिक रूप से राष्ट्रीय चेतना जगाने का कार्य किया था। उनके द्वारा रचित इस नाटक के प्रकाशन को, वस्तुतः मैं, उनके प्रति बीकानेर की ओर से एक श्रद्धांजलि के रूप में उल्लिखित करना चाहता हूं। नेहरु साक्षरता पुरस्कार प्राप्त और शिक्षाविद् व इतिहासविद्, बीकानेर में स्वतन्त्रता आंदोलन के अंतिम दौर के साक्षी, विभिन्न जन आन्दोलनों में सक्रिय भागीदारी करने वाले सामाजिक कार्यकर्त्ता, समाजवादी चिंतक, बीकानेर प्रौढ शिक्षण समिति के अध्यक्ष तथा संस्था के पूर्व निदेशक व संस्था की त्रैमासिक शोध पत्रिका 'वैचारिकी' के संस्थापक सम्पादक श्री सत्यनारायण पारीक ने इस 'धर्म विजय' नाटक का बडी मेहनत से लिप्यंतरण व सम्पादन कर अपने 'सम्पादकीय' मे इसके ऐतिहासिक एवं राष्ट्रीय महत्त्व को उजागर किया है। संस्था के वर्तमान निदेशक डॉ. बाबूलाल शर्मा ने इसे प्रकाशन की दृष्टि से सज्जित करने एवं इसके प्रारम्भ मे बाबू मुक्ताप्रसाद का सम्यक् परिचय प्रस्तुत करने का सराहनीय कार्य किया है। विकास प्रकाशन के श्री ब्रजमोहन पारीक ने सुचारु मुद्रण-व्यवस्था कर अपना सहयोग दिया है। आप सभी को हार्दिक धन्यवाद। आशा है पाठक वृन्द संस्था के इस प्रकाशन का स्वागत करेंगे।

मूलचन्द पारीक

15 अगस्त 2000

(रा.वि.मं. शोध प्रतिष्ठान)

प्रस्तुति

बीकानेर में राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत बाबू मुक्ताप्रसाद : प्रस्तुत नाटक 'धर्म विजय' के लेखक बाबू मुक्ताप्रसाद सक्सेना के संबंध में श्री सत्यदेव विद्यालंकार के ग्रंथ "बीकानेर का राजनैतिक विकास", भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान की त्रैमासिक शोध पत्रिका 'वैचारिकी' (भाग 3 : अंक 1, 1975 ई.) में श्री सत्यनारायण पारीक के आलेख "बाबू मुक्ताप्रसादजी का राज्य निर्वासन" और राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर मे सुरक्षित बीकानेर राज्य की महकमाखास पत्रावलियों (नं. सी. II सन् 1926-32 पृ 1-10) तथा होम डिपार्टमेंट की गोपनीय पत्रावलियों (नं. 101, 1945 पृ 1-9 एवं नं. सी V 1937 पृ. 1-8) के आधार पर श्रीमती (डॉ.) चेतना मुद्गल के ग्रंथ "बीकानेर में जन आन्दोलन" (प्रथम सं. 1996, पृ. 177-181) में सभी उपलब्ध जानकारियां दी गई हैं। तथापि इस सम्बन्ध में और जिज्ञासा करने पर विभिन्न महानुभावों से प्राप्त जानकारी के अनुसार बाबू मुक्ताप्रसाद के पिता का नाम श्री प्यारेलाल सक्सेना था जो कि अलीगंज, जिला– एटा (उ.प्र.) के रहने वाले थे और बीकानेर राज्य में तहसीलदार के पद पर कार्यरत थे। मुक्ताप्रसादजी अलीगढ से 'मुख्त्यारी' की परीक्षा उत्तीर्ण कर बीकानेर आए थे और फिर उन्होंने यहाँ के श्री डूंगर कालेज में भी अध्ययन किया था। जनरल जयदेवसिंहजी भार्गव तथा स्टेट कौंसिल के मेम्बर रिड़मलदानजी बारहठ, इनके साथियों में थे। वकालत की सनद प्राप्त कर मुक्ताप्रसादजी बीकानेर में ही वकालत करने लगे। बाबू मुक्ताप्रसाद प्रतिभाशाली और कानून के बहुत अच्छे ज्ञाता थे, अतः उनका सम्पर्क राज्य के उच्चाधिकारियों के साथ-साथ स्वयं महाराजा गंगासिंहजी से भी हो गया था। उल्लेखनीय है कि बीकानेर राज्य की प्रथम 'लॉ-रिपोर्ट' का सम्पादन मुक्ताप्रसादजी ने ही किया था।

बाबू मुक्ताप्रसाद का जीवन-काल मुख्य रूप से बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों से संबंधित है, जिनमें अंग्रेजों की दासता से देश को मुक्त कराने और इसके साथ-साथ विभिन्न देशी राज्यो में, उनके पूर्ण संरक्षण एवं मार्गदर्शन में शासन कर रहे, जनता के प्रति उत्तरदायित्वहीन राजतंत्र के स्थान पर जनतंत्र की स्थापना करने के लिए जनता मे नवजागरण की लहर चलना प्रारम्भ हो गई थी जिसका प्रभाव बीकानेर में भी होने लगा था। बाबू मुक्ताप्रसाद 1917 ई. से पूर्व बीकानेर आ गए थे। 1917 में उन्होंने एक पत्र चूरू के श्री गोपाल स्वामी को लिखा था जिसमें उनसे लाई गई एक समाचारपत्र की फाइल वापस भेजने का जिक्र है। इसी तरह उनका 1921 में लिखा गया पत्र है जिसमें स्वामीजी से चर्खे भेजने का अनुरोध किया गया है। इस समय बीकानेर में बाबू मुक्ताप्रसाद एवं उनके साथियों के द्वारा मेलों में यात्रियों की सेवा करने, बीकानेर रेल्वे स्टेशन पर पानी पिलाने तथा निर्धन लोगों के न्यायसंगत मुकदमों की नि:शुल्क पैरवी करने जैसे परोपकारी कार्यों के साथ-साथ स्वदेशी व खादी के प्रचार, दलितों-हरिजनों के उद्धार एवं नाटकों के मचन के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का विकास करने जैसे जन-जागरण के कार्य किए जाने लगे थे। इससे मुक्ताप्रसादजी बीकानेर में एक जनप्रिय व्यक्तित्व के रूप में उभरने लगे थे जो कि बीकानेर राज्य के शासक महाराजा गंगासिंहजी एवं उनके प्रशासन को अच्छा नहीं लग रहा था।

सन् 1920 ई. मे बाबू मुक्ताप्रसाद ने बीकानेर मे सद्विद्या प्रचारिणी सभा की स्थापना की जिसका उद्देश्य लोगों मे शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ राष्ट्रीय भावनाओं का निर्माण करने व राजकर्मचारियों के अत्याचार, घूंसखोरी आदि के विरुद्ध जाग्रति लाना था। सन् 1921 में ब्रिटिश भारत में असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात होने पर बीकानेर

में भी बाबू मुक्ताप्रसाद की प्रेरणा पर उनके ही अहाते में, आप और आपके साथियों ने विदेशी कपड़ों की होली जलाई और शुद्ध खादी पहनने का व्रत लिया। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा स्थापित 'मित्र मंडल' लावारिश लाशों का दाह संस्कार करने, कोलायत के मेले में शुद्ध खाद्य पदार्थों की दूकानें लगाने व हरिजनों के मौहल्ले में सफाई आदि के कार्यों में भी सहयोग देता था (सत्यदेव विद्यालंकार–बीकानेर का राजनैतिक विकास पृ. 27)।

'सद्‌विद्या प्रचारिणी सभा' के तत्त्वावधान में ही 'सत्य विजय' और 'धर्म विजय' नाम से दो नाटक तैयार किए गए और 'मित्र मंडल' के द्वारा उनका मंचन किया गया। वैसे तो ये दोनों नाटक धार्मिक लगते थे परंतु इनके संवाद भ्रष्ट सामंतों-अधिकारियों की रिश्वतखोरी एवं उनके द्वारा जनता पर किए जाने वाले अत्याचारों का पर्दाफाश करते थे। यही नहीं, नाटक के अंत में विदेशी वस्त्रों की होली जलाई जाती और महात्मा गांधी की जय-जयकार की जाती। इससे नाराज होकर बीकानेर शासन ने इन नाटकों को प्रतिबंधित कर यह आवश्यक कर दिया कि भविष्य में किसी भी नाटक को, उसकी रिहर्सल पुलिस-अधिकारियों को दिखाने के पश्चात् ही मंचित किया जा सकेगा। 'धर्म विजय' नाटक को लेकर बीकानेर राज्य के प्राइम मिनिस्टर द्वारा लिखी गई टिप्पणी इस प्रकार है–

"The report is in relation to a drama performed by the Mitra Mandal of Bikaner and the title of the drama is Dharma Vijay. It must be remembered in these times of political activities most of the plays even in British India appearing plain outwordly are really political dramas where the varius political questions of the day depicted in concrete forms. This drama of 'Dharma Vijya' as will appear from the report is not an ordinary play but a political one dressed in the garv of religion For the future it seems very desirable that all plays before they are staged should be censured. For instance, why should anyone on the stage encourage shouts of 'GANDHIJI-KI-JAI' or why should foreign cloth taken out and burnt on the stage, as I understand has happened. [Home department confidential file 1923 XI-Rajasthan state Archives-Bikaner]

सन् 1930 के पश्चात् के काल में मुक्ताप्रसादजी के रचनात्मक कार्यों से प्रभावित होकर बीकानेर में कई लोग उनसे जुड़ गए थे तथा राष्ट्रीय चेतना से सम्पृक्त, बीकानेर राज्य के विभिन्न भागों में शासक वर्ग की अत्याचारी नीति के विरुद्ध सक्रिय कई लोगों से उनका सम्पर्क सम्बन्ध हो गया था, जैसे– रतनगढ़ में वकालत कर रहे श्री सत्यनारायण सर्राफ, चूरू में समाजसेवी श्री गोपालदास स्वामी, भादरा में व्यवसायी लाला खूबराम सर्राफ, बीकानेर में पेंटर और न्यूज पेपर एजेंट श्री लक्ष्मीदास स्वामी, बीकानेर में वकालत कर रहे बाबू रघुवर दयाल गोयल तथा वैद्य मघाराम शर्मा इत्यादि।

सन् 1931 में लंदन में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन हुआ जिसमे बीकानेर के महाराजा गंगासिंह भारत के देशी राज्यों के प्रतिनिधि के रूप मे सम्मिलित हुए। इस अवसर पर अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के तत्त्वावधान में अन्य देशी राज्यो की भांति बीकानेर राज्य में भी शासन के दमन एवं अत्याचार को उजागर करने वाला एक पैम्पलेट प्रकाशित किया गया जिसके सम्बन्ध में गोलमेज सम्मेलन के अध्यक्ष लार्ड सेंकी ने महाराजा गंगासिंह से स्पष्टीकरण मांगा था। इस घटना से महाराजा अत्यन्त क्रोधित हो गए और इससे संबंधित भादरा के लाला खूबराम सर्राफ व श्री सत्यनारायण सर्राफ, चूरू के श्री गोपालदास स्वामी, श्री चन्दनमल बहड, श्री सोहनलाल सेवग, श्री प्यारेलाल ब्राह्मण तथा राजगढ के श्री बदरी प्रसाद सरावगी और श्री लक्ष्मीचन्द सुराणा को गिरफ्तार कर उन पर मुकदमा चलाया गया जो 'बीकानेर षड्यंत्र केस' (1932) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अभियुक्तों की ओर से इस मुकदमे की पैरवी बाबू मुक्ताप्रसाद व बाबू रघुवरदयाल गोयल ने की। मुक्ताप्रसादजी ने मुकदमे के लिए मुंबई के

व्यवसायियों से आर्थिक सहायता प्राप्त की और अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के नेता श्री अमृतलाल सेठ, श्री मणिशंकर त्रिवेदी व श्री पी.एल. चूडगर से सलाह ली (होम डिपा. बीका. 1945, नं. 101-हिस्ट्री सीट ऑफ सत्यनारायण सर्राफ–पृ. 1-7)।

सन् 1936 में बीकानेर षड्यंत्र केस के सभी अभियुक्तों के सजा काट कर आ जाने के पश्चात् मुक्ताप्रसादजी ने श्री सत्यनारायण सर्राफ व अन्य सहयोगियों के साथ, शासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने के उद्देश्य से अन्य कई देशी राज्यों की भांति बीकानेर मे भी 4 अक्टू. 1936 को 'प्रजा मंडल' की स्थापना की और श्री मघाराम शर्मा को इसका अध्यक्ष तथा श्री लक्ष्मीदास स्वामी को मंत्री बनाया गया। इस समय उदरासर में वहाँ के जागीरदार द्वारा बेजां 'लाग-बाग' वसूल करने के विरुद्ध किसानों में आक्रोश फैल रहा था और वे प्रजामंडल का सहयोग चाहते थे। अतः प्रजामंडल के अध्यक्ष वैद्य मघाराम शर्मा उदरासर गए और वहाँ किसानों व जागीरदार से सम्पर्क किया। तत्पश्चात प्रजामंडल ने किसानो पर हो रहे अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई तो, प्रजामंडल के प्रति पहले से ही सशंकित सरकार ने मघारामजी शर्मा व लक्ष्मीदासजी स्वामी को गिरफ्तार कर लिया और प्रजामंडल की गतिविधियों को बढावा देने वाले मुक्ताप्रसादजी की भी विशेष निगरानी रखी जाने लगी। इसी बीच बाबू मुक्ताप्रसाद ने बीकानेर राज्य में हो रहे दमन और अत्याचार को उजागर करने के लिए श्री सत्यनारायण सर्राफ को दिल्ली में एक प्रेस लगाने के लिए प्रेरित कर दिल्ली भेज दिया। यद्यपि धनाभाव के कारण यह योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी, परंतु महाराजा को जब इस योजना की जानकारी मिली तो इसे राजद्रोह मानकर बीकानेर सैफ्टी एक्ट नं. 3 (1932 ई.) के अंतर्गत बाबू मुक्ताप्रसाद, श्री सत्यनारायण सर्राफ, श्री मघाराम शर्मा व श्री लक्ष्मीदास स्वामी को 17 मार्च 1937 की अर्द्धरात्रि तक बीकानेर राज्य से निकल जाने का आदेश दे दिया गया (होम डिपा. बीका. गोपनीय 1937 नं. सी–V पृ. 1-8)। बीकानेर रेल्वे स्टेशन पर बहुत से लोगो ने एकत्र होकर इन्हें भावभीनी विदाई दी। बीकानेर से विदा होकर श्री सत्यनारायण सर्राफ अपने ससुराल हिसार चले गये जबकि शेष तीनों सज्जन 18 मार्च को दिल्ली पहुँचे जहाँ श्री आनन्दराज सुराणा, श्री लक्ष्मीनारायण गाडोदिया, श्री सत्यदेव विद्यालंकार व श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति जैसे नेताओं ने स्टेशन पर उनका स्वागत किया। बाद मे श्री सर्राफ भी 21 मार्च को दिल्ली आ गए।

बीकानेर से निर्वासित होकर बाबू मुक्ताप्रसाद और उनके साथी, जब दिल्ली पहुँचे तो वहाँ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक चल रही थी। अत. इन लोगों ने इस बैठक में उपस्थित होकर पं. जवाहरलाल नेहरु, सरदार पटेल व डॉ. पट्टाभिसीतारमैया को बीकानेर से अपने निर्वासन की जानकारी दी। बाबू मुक्ताप्रसाद ने दिल्ली में महात्मा गांधी से भी भेंट की बताते हैं।

पं. नेहरु ने इस दमनपूर्ण कार्यवाही की निन्दा करते हुए महाराजा गंगासिंह को एक पत्र लिखा। डॉ. पट्टाभिसीतारमैया ने अखिल भारतीय देशी राज्य परिषद् की कार्यकारिणी में तथा 22 मार्च 1937 को दिल्ली की मारवाडी लाइब्रेरी में श्री लक्ष्मीनारायण गाडोदिया के सभापतित्व में देशी राज्य लोक परिषद् की बैठक– जिसमें श्री आनन्दराज सुराणा, श्री केदारनाथ गोयनका, श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, श्री सत्यदेव विद्यालंकार आदि उपस्थित थे– में इस निर्वासन आज्ञा की निन्दा कर, इसे वापस लेने की मांग की गई।

तत्पश्चात् श्री सत्यनारायण सर्राफ मुंबई, श्री मघाराम शर्मा कलकत्ता और श्री लक्ष्मीदास स्वामी जोधपुर चले गए। 23 मार्च 1937 को बाबू मुक्ताप्रसाद सक्सेना भी अपने मूल निवास स्थान अलीगंज चले गए और राजनीति से विरत हो गए। 11 अगस्त 1942 को मुंबई में कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में भाग लेकर लौटते समय,

लाला खूबराम सर्राफ व बाबू रघुवरदयाल गोयल इनसे मिले थे। मुक्ताप्रसादजी ने अपने निर्वासन को लेकर, बीकानेर शासन से कभी कोई अनुनय-विनय नहीं किया, हाँ, एक बार बीकानेर में अध्ययनरत अपने पुत्र को बेवजह तंग न करने का आग्रह अवश्य किया था। सन् 1943 में महाराजा गंगासिंहजी के देहांतोपरांत शादूलसिंहजी के महाराजा बनने पर सभी राजद्रोहियों की जेल, निर्वासन आदि की सजाएं समाप्त कर दी गई। परन्तु बाबू मुक्ताप्रसाद लौट कर बीकानेर नहीं आए। बाद में अलीगंज से उनके निधन की सूचना आने पर लाभूजी के कटले मे समाजसुधारक रामगोपालजी मोहता की अध्यक्षता में 3 अप्रेल 1944 को एक शोक सभा हुई थी जिसमें वकील सूरजकरणजी आचार्य, वकील रावतमलजी कोचर, रिटायर्ड जज एम. अब्दुला साहब, वकील केवलरामजी बहड़, डॉ. छगनलाल मोहता, वकील बदरीप्रसादजी व जसवंतरायजी बैद सहित लगभग 150 लोग उपस्थित हुए थे।

प्रस्तुत नाटक 'धर्म विजय' : यह एक ऐसे व्यक्ति की पेशकश है जो मात्र एक लेखक ही नही, अपितु एक निष्ठावान कार्यकर्त्ता था और जिसमें देशभक्ति, समाज सेवा तथा बुराई से संघर्ष करने का जज्बा था, जिसे उसने अपने इस नाटक में धर्म और अधर्म के संघर्ष की सुप्रसिद्ध कौरव-पांडव कथा के रूपक से प्रस्तुत किया है। बाबू मुक्ताप्रसाद महात्मा गांधी से अत्यंत प्रभावित थे और इसीलिए उन्होंने अहिंसा-आधारित विरोध, त्याग, बलिदान तथा सत्याग्रह के द्वारा दुशासन की समाप्ति और सुशासन की स्थापना के लिए लोगों को प्रेरित करने के महत् उद्देश्य से इस नाटक की रचना की थी।

यह नाटक पर्शियन शैली में प्रबंधित किया गया है जो कि उस समय अत्यंत लोकप्रिय थी। इसके संवादों का गठन पात्र, परिवेश तथा प्रसंग के अनुरूप हुआ है। सभी संवाद पद्यमय, चुटीलापन लिए हुए, प्रभावोत्पादक और समां बांध देने वाले हैं। इनमें कई जगह तो अच्छी कविता प्रस्तुत हुई है, जैसे–

कांटे में सौदा तुलता है, यह न्याय धर्म की बस्ती है।
इस हाथ करो उस हाथ भरो यह सौदा दस्त बदस्ती है।।
अब तो चश्मा फूट निकला शोर पैदा हो गया।
बंध क्या बांधेगा अब नाला दरिया हो गया।।

नाटककार स्वयं रंगमंच से संबंधित है और नाटक की रचना, उसे रंगमंच पर प्रस्तुत करने के उद्देश से की गई है, अत. इसमें ऐसे दृश्यों से बचा गया है जिनको प्रस्तुत करने में कठिनाई होती है। फारसी लिपि में बद्ध होने के कारण इसे एक उर्दू नाटक कहा जा सकता है, परन्तु इसकी भाषा हिन्दी (खडी बोली) है और जिसका इसमें प्रारम्भिक परन्तु अच्छा रूप दिग्दर्शित हुआ है। संस्कृत और अरबी-फारसी के शब्दों का संतुलित और समन्वयपरक तथा व्यावहारिक बोलचाल के ढंग पर प्रयोग किया गया है। सामान्यत: नाटक की भाषा हिन्दी खडी बोली है, परन्तु अंकों के बीच दिए गए कामिक्स में सेठ पदमामल मारवाड़ी में, घींसिया भोजपुरी में और अंग्रेज अफसर अंग्रेजी टोन, वाली हिन्दी मे बोलते हैं जिससे दर्शक पर अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न होता है।

आदरणीय पारीक साहब ने मात्र परिश्रमपूर्वक ही नहीं अपितु श्रद्धापूर्वक इस नाटक का फारसी से नागरी में लिप्यंतरण व सम्पादन किया है जिसके स्पष्ट ही दो फलित होंगे, एक तो बीकानेर में स्वतंत्रता आन्दोलन से संबंधित, जनगारण में नाटको के प्रयोग का पक्ष उजागर होगा और दूसरा यह कि राजस्थान में हिन्दी-गद्य तथा नाटक विधा के इतिहास को अपने समय की एक श्रेष्ठ कृति उपलब्ध होगी।

- डॉ. बाबूलाल शर्मा
निदेशक – भा. वि. मं. शोध प्रतिष्ठान

सम्पादकीय

बीकानेर की नाट्य परम्परा में पश्चिमी राजस्थान मे प्रचलित लोकनाट्यों से रम्मत स्वाँग आदि;नाट्य रूपों का प्रचलन तो रहा ही है परन्तु साथ ही साथ 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों से आधुनिक नाट्य प्रभाव भी पाये जाते हैं। इसका श्रेय उन पारसी नाटक कम्पनियों को दिया जाना चाहिए जो वर्तमान उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा और तत्कालीन देशी रियासतों में जाया करती थी और अपने नाटक दिखाकर जनता को आकर्षित करती थी। इन्हीं नाटक मण्डलियों की कडी में बीकानेर की 'व्यास नाटक मण्डली' भी अपनी नाटकीय प्रस्तुतियों के लिए लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी थी। इसके नाटक बीकानेर रियासत की सीमा से पार कलकत्ता और कानपुर तक अपनी धाक जमाये हुए थे। इनके नाटको में 'राजा हरिश्चन्द्र', 'मोरध्वज', 'वीर-प्रताप' और आगा हश्र व नत्थाराम के नाटक विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। 'व्यास नाटक-मण्डली' के कर्त्ता-धर्ता परमसुखजी- मंगलचन्दजी व्यास थे, जो 'नाटकिया व्यास' के नाम से प्रसिद्ध थे। वर्तमान विश्व-ज्योति सिनेमाहाल के स्थान पर पहले यहां रेल्वे थियेटर था जिसमें अधिकांश नाटक मंचित होते थे। स्वयं महाराजा गंगासिंहजी को भी नाटकों में रुचि थी। सिद्धों के लोक नाट्य अक्सर मंचित होते रहते थे। महाराज हरीसिंहजी महाजन के यहां गुणीखाना था, जिसमें कई कलाकार और संगीतज्ञ आश्रय पाते थे। इन सभी परिस्थितियों के कारण बीकानेर की जनता में नाटक खेलने व देखने की लगन व्याप्त थी और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में एक परम्परागत रंगमंच की स्थापना बीकानेर में हो गई थी।

बीकानेर के आधुनिक इतिहास में सन् 1920 से 1925 तक का काल जन-जागरण का उषाकाल कहा जा सकता है, जिसमें राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत नाटकों की भी उल्लेखनीय भूमिका है। यहाँ आधुनिक राष्ट्रीय और सामाजिक नाटकों का प्रारम्भ सन् 1920-21 में हुआ। महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन का प्रभाव बीकानेर में यत् किंचित रूप में बाबू मुक्ताप्रसादजी के क्रियाकलापों से ही प्रकट हुआ और उन्हीं के द्वारा प्रचार माध्यम के रूप में कतिपय नाटक मंचित हुए। देश-प्रेम, स्वदेशी की भावना, अपने अधिकारों का भान, बलिदान होने की तमन्ना, नारी शौर्य, सामाजिक त्रासदियों का निरूपण और राजा-प्रजा के आदर्श रिश्ते, इन नाटको की मुख्य विषय-वस्तु थी।

बाबू मुक्ताप्रसादजी सक्सेना वकील गांधीवादी विचारों के देशभक्त थे और उन्होंने अपने दो नाटकों के माध्यम से खादी अपनाने, अस्पृश्यता निवारण, शासन-समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और अन्याय-अत्याचार आदि विषयो पर तत्कालीन राष्ट्रीय विचारों का प्रचार-प्रसार किया था। मुक्ताप्रसादजी के प्रमुख सहयोगियो और शिष्यो में बाबूरामजी वकील, शंकरलालजी मोदी रेवेन्यु वकील, रावतमलजी कोचर एडवोकेट, जगतरामजी वकील, हरिप्रकाशजी भटनागर, बाबू भोलानाथजी तथा मुरादबख्शजी कत्थक आदि थे। शंकरलालजी मोदी और रावतमलजी कोचर तो अपने समय के अच्छे अभिनेता और गायक थे। बाबू भोलनाथजी भी अच्छे गायक और हंसोड थे। रंगमंच पर नाटकों की प्रस्तुति के दौरान एक स्थल पर पात्र द्वारा खादी के कपडे पहन कर अपने विदेशी वस्त्रों की होली जलाये जाने व 'महात्मा गांधी की जय' का उद्घोष करने पर रियासत की सरकार ने बडी आपत्ति की थी और बाद में नाटकों के मंचन के संबध में इतने कठोर नियम बना दिये गये कि फिर कभी इन नाटकों के अभिनीत होने का पुरालेखों में कोई उल्लेख नहीं मिलता।

मुक्ताप्रसादजी के ही एक अन्य शिष्य और व्यवसाय से वकील पं. सूरजकरणजी भी अच्छे नाटक-निर्देशक थे और इनकी अपनी एक स्वतंत्र नाटक मण्डली– 'पुष्टिकर नाट्य मण्डली' के तत्वावधान में 'ध्रुव चरित' नाटक मंचित हुआ करता था। इस नाटक में भी देशभक्ति और गांधीजी के असहयोग आन्दोलन का पुट था, जिस कारण बाद में इस पर भी रोक लगा दी गई थी। इस नाटक मण्डली में विजयशंकरजी व्यास, रणजीतमलजी व्यास और भतमालजी जोशी इत्यादि का पूरा-पूरा सहयोग रहता था। कॉमिक का पार्ट भतमालजी जोशी के भाई मेघराजजी जोशी बखूबी किया करते थे। इन्होंने अपने कॉमिक में असहयोग आंदोलन की चर्चा की थी और अपनी दूकान में विदेशी कपड़ों को बेचना बंद करके स्वदेशी कपड़ों का व्यापार प्रारम्भ करने का उल्लेख किया था। इसी प्रकार सूरजकरणजी आचार्य ने भी स्टेज पर आकर देश के लिए सब कुछ न्यौछावर करने की प्रतिज्ञा ली थी।

बीकानेर में स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास का अध्ययन करते समय मुझे बाबू मुक्ताप्रसादजी के नाटकों का उल्लेख कई कागज-पत्रों में मिला, पर मूल रूप में वे नाटक कहीं प्राप्त नहीं हुए। इनकी प्राप्ति के लिए मेरी जिज्ञासा उत्तरोतर बढ़ती चली गई। खूब तलाश करने पर भी ये कहीं हाथ नहीं लगे। पर ईश्वर कृपा से एक दिन ऐसा संयोग बैठा कि रेवेन्यू वकील श्री शंकरलाल मोदी से अकस्मात् भेंट हुई और चर्चा के दौरान जब इन नाटकों का उल्लेख आया तो वे चौंके और पूछा– आप इनका क्या करेंगे ? मैंने कहा कि इनका अध्ययन कर प्रकाशित करवाऊंगा। यह सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा कि अब तक मैं किसी ऐसे ही सुपात्र की तलाश में था, आप मिल गए तो इन्हें आप ही सहेजें। दूसरे ही दिन उन्होंने मुझे बाबू मुक्ताप्रसादजी द्वारा, हिन्दी भाषा परन्तु उर्दू लिपि में लिखित दो नाटकों की पांडुलिपियाँ सौंप दी। इन नाटकों पर उनका कोई शीर्षक लिखा हुआ न देखकर, जब मैंने मोदीजी से इस सम्बन्ध में पूछा तो उन्होंने बताया कि एक नाटक का नाम तो है– "धर्म विजय" तथा दूसरे का नाम है– "सत्य विजय"। ये दोनों नाटक फारसी लिपि में लिखित उर्दू नाटक हैं जिनमें से मैंने 'धर्म विजय' का नागरी में लिप्यंतरण व सम्पादन किया है।

'धर्मविजय' नाटक आदरणीय शंकरलालजी मोदी के जीवन-काल में प्रकाशित नहीं हो पाया, इसका मुझे हार्दिक अफसोस रहेगा। अब एक लम्बे अंतराल के बाद इस नाटक के प्रकाशित होने पर मुझे आज स्वर्गीय शंकरलालजी मोदी को दिए अपने वचन के पूर्ण होने की संतुष्टि हो रही है।

प्रस्तुत नाटक 'धर्म विजय' बाबू मुक्ताप्रसादजी और उनके मित्रों द्वारा स्थापित 'मित्र-मण्डल' द्वारा बीकानेर में सन् 1923 में मंचित किया गया था। इसमें महाभारत को आधार बनाकर देश व समाज की तत्कालीन स्थितियों पर प्रकाश डालते हुए देशप्रेम व उस पर बलि होने वाले वीरों की गाथा अंकित की गई है। इसका मुख्य उद्देश्य है देशोद्धार।

इस नाटक में राजा और उसके कर्मचारियों की प्रजा के प्रति कैसी पूत-पवित्र भावना रहनी चाहिए, इसका सांगोपांग निदर्शन किया गया है। इसके विपरीत प्रजा के उत्पीड़न से समाज और परिवारों की कैसी दयनीय स्थिति हो जाती है, इसके भी कई लोमहर्षक चित्र खींचे गये हैं।

समाज के पिछड़ेपन के कारण उसमे कैसी-कैसी विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं, इसका भी नाटक द्वारा जगह-जगह दिग्दर्शन कराया गया है।

कोई भी देश तब तक उन्नति नहीं कर सकता, जब तक कि युवावर्ग व स्त्रियों में राष्ट्रीय चेतना न जागे और वे देश की समृद्धि हेतु बलिदान होने की भावना से ओतप्रोत न हों। इसी भावना के अनुरूप इस नाटक में महात्मा विदुर की पत्नी वसुमति और उनके युवा पुत्र सूरसेन की देश के लिए मर-मिटने की भावना प्रतिफलित हुई है।

किसी भी राज्य की उन्नति वहां के कर्मचारी वर्ग की कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी तथा युगानुकूल स्वच्छ कायदे-कानूनों पर निर्भर करती है। यदि इन गुणों का अभाव होता है, तो प्रजा दु:खी व नि:सहाय अनुभव करती है। इस नाटक में कर्मचारियों के चरित्र पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है तथा चापलूस और हरामखोर कर्मचारियों की भर्त्सना की गई है।

आर्थिक-सामाजिक अपराधों में जेल भेजे जाने वाले लोगों की परिस्थितियों की मजबूरी का चित्रण भी करते हुए नाटककार ने तत्कालीन आर्थिक-सामाजिक उत्पीडन का मार्मिक दिग्दर्शन नाटक मे किया है।

गांधीजी के आत्मशुद्धि के रचनात्मक कार्यक्रमों में अस्पृश्यता निवारण का कार्यक्रम बडा हृदयग्राही था और बीसवीं सदी के तीसरे दशक मे इस सम्बन्ध मे कैसी मानसिकता थी, इसका दिग्दर्शन भी नाटक में किया गया है।

उस समय नये शासन-सुधारों से बनी विधान-सभा मे कुर्सी व उपाधियाँ प्राप्त करने के लिए सामंतों व धनाड्यो में पारस्परिक होड और इस हेतु अपनाये जाने वाले उचित-अनुचित मार्ग और 'साहबों' की खुशामद और गिरावट का यह आलम था कि अर्दलियों तक को रिश्वत दी जाती थी। ऐसी तत्कालीन प्रवृत्तियाँ नाटक मे प्रयुक्त 'कामेडीज' मे उजागर हुई हैं। हर युग में कुछ ऐसे प्रजा-जन होते हैं जो कि 'जी-हजूरी' पर ही अपना जीवनयापन करते हैं। ऐसे लोग बडे-बडे खिताब प्राप्त करने के लिए उच्चाधिकारियों की चापलूसी करते हैं तथा जनता के धन का भी अपव्यय करते हैं। ऐसी यथार्थवादी स्थिति का नाटक में कई जगह अकन किया गया है जो आज भी प्रासंगिक है।

सन् 1923 की परिस्थितियो में इस नाटक के चरित्र-नायकों का जनता पर गहरा प्रभाव पडा। स्थान-स्थान पर लोग एकत्र होकर इसके प्रदर्शनों की चर्चा करने लगे। इस कारण महाराजा गंगासिहजी ने भविष्य मे इस नाटक के मंचन पर रोक लगा दी। उन्होंने अपने आदेश में यह लिखा कि– ब्रिटिश भारत में वर्तमान में इस प्रकार के नाटक मंचित हो रहे हैं, जिनका ऊपरी आवरण तो धार्मिक होता है, परन्तु यथार्थ में वे राजनीति से प्रेरित होते हैं। यह नाटक भी उन्हीं मे से एक है।

इस नाटक के प्रकाशन सबधी सारी प्रक्रियाओं को पूरा करने व इसे प्रकाशन के लिए सजाने-सँवारने का कार्य डॉ. बाबूलाल शर्मा ने किया है तथा मुद्रण की समुचित व्यवस्था श्री ब्रजमोहन पारीक ने की है, दोनो के प्रति शुभाशीष व स्नेह। नाटक का प्रकाशन करने के लिए भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान के प्रति आभार। धन्यवाद।

– सत्यनारायण पारीक

15 अगस्त, 2000 — बिन्नाणी बिल्डिंग, अलख सागर, बीकानेर

सीन पहला

(शंकर और यमराज का प्रवेश)

गाना

जय जय स्वामी नमो नमामि।
अद्‌भुत रचना देखत तोरी, ध्यान धरत ऋषि मुनि और ज्ञानी।।
आदि अंत हो करता–धरता, चराचर पालक और दुख हरता।
जग त्राता और ईश विधाता
सुमरत तुमको सुर–नर ध्यानी, अंतर्यामी, नमो नमामी।।

स्तुति

सोहत हिमगिरि विशाल मंजु मुकुट भव्य भाल।
गंग जमन जाल कंबु कंठ माल।
श्याम विपिन केश सुघर सुभग वेश।
कमल बदन कमल शैन जन्मभूमि। जयति–जयति मातृभूमि।।
भक्ति मुक्ति जयति द्वार सौम्य शक्ति सौख्य सार।
आदि ज्ञान-खान धान्य धन निधान।
बल परता पूरन सहस्र कोटि अगन मदन खलन–दलन,
कुशल करन, विपत–हरन जन्मभूमि। जयति–जयति मातृभूमि।।

यमराज – महाराज ऐसी इसमें क्या प्रभुताई है जो आप के हृदय में समाई है।

शंकर – इसकी सुन्दरता ही नहीं इसमें अनुपम यकताई है। ब्रह्मलोक की ऊँचाई, शिवलोक की सुन्दरताई इसकी तुच्छ सी वस्तु पर न्यौछावर होती है। विष्णु भगवान की कण्ठ शोभा बढ़ाने के लिए सरस्वती अपने अद्‌भुत तागे मे इस पुण्यभूमि के परमाणु ही के मोती पिरोती है–

यहीं पर स्वर्ग से धाराएँ अमृत जल बहाती हैं।
यहीं पर चोटियाँ पर्वत हिमालय की सुहाती हैं।।
श्री भागीरथी के जल मे लहरें मौज खाती हैं।
यही कारण है यहाँ का अप्सराएँ गान गाती हैं।।
आहा, सुन्दर है, अति सुन्दर है, पवित्र और विचित्र है–
स्वर्ग से बढ़कर है शोभा इस ऋषि स्थान की।
विश्व में भूमि नहीं है, दूसरी इस शान की।
जिस जगह पैदा हुए रघुकुल तिलक और जानकी।
किस तरह महिमा हो वर्णन ऐसे देवस्थान की।।
आजकल कलियुगी प्राणियों का कैसा आचार-विचार है, यमराज !

यमराज – महाराज, इन दिनों दुर्योधन के अत्याचारों से बाल-वृद्ध और स्त्रियों को क्लेश हो रहा है। अन्याय और अधर्म से व्यथित सारा देश हो रहा है।

शंकर – *(आश्चर्य से)* हैं ! इस पवित्र भूमि पर, और यह अनर्थ ! इस पुण्य भूमि को तो विष्णु भगवान गोलोक से भी पवित्र समझते हैं–

यहीं पर धर्म-चर्चा सत्य का व्यवहार होता है।
इसी भारत मे विष्णु का मनुज अवतार होता है।
इसे वैकुंठवासी अपना घर समझते हैं।
वरन् यो कहिये घर से भी इसे बेहतर समझते हैं।।

यमराज – महाराज शोक की आवश्यकता नहीं, कुछ करना होगा, क्योकि धर्मात्माओ के स्थान में कौरवों का अन्याय हो रहा है। सदाचार की जगह व्यभिचार और नीति की जगह अनाचार का प्रचार हो रहा है। इन अन्याय पीडित अकाल-मृत्यु प्राणियो का क्या करना होगा ?

शंकर – जो इस देश और जाति पर बलिदान हुए हैं,
वोह समझ लो मुक्ति के लिये विष्णु-लोक के मेहमान हुए हैं।
वोह ऐसे जाति-भक्तो को सर आंखों पर बिठायेंगे,
जो हो बलिदान जाति पर वही ही मोक्ष पायेंगे।

यमराज – सत्य वचन। जाति-भक्ति वास्तविक रूप में विष्णु-भक्ति स्वरूप है। पवित्र पावन और अनुपम है।

शंकर – परन्तु अकाल-मृत्यु का मुख्य कारण क्या है ?

यमराज – हे भूतनाथ ! प्रचलित नीति दुराचार फैला रही है। आयु घटा रही है। दुःशासन और उसके सहायको की युक्ति घुन बनकर मनुष्य जीवन को खा रही है। दुर्योधन की दमन-नीति से प्रजा दुखी है। अन्यायी कर्मचारियों से कोई सुखी नहीं है।

शंकर – तो क्या यह अन्याय विष्णु भगवान शान्ति से देख रहे हैं ?

यमराज – यही नहीं वरन् दु:शासन अपनी इच्छा पूर्ति के लिये दीन और दुखियों को सता रहा है। निर्दोषों को दंडित कर अभियुक्तों को मुक्त कर आनंद मना रहा है। अनीति ने दरिद्रता फैला रखी है और आपकी पवित्र आज्ञा अभिमानी पुरुषों ने मिट्टी में मिला रखी है।

शक्ति नहीं है जोर नहीं और जर नहीं,
धर्म और कर्म का तो यहां पर गुजर नहीं।
अब धर्म लोप होने में कोई कसर नहीं,
प्रजा के दुख की राजा को कोई फिकर नहीं।
भक्तों को दास जानके उपकार कीजिये,
इस पुण्य भूमि का प्रभु, उद्धार कीजिये।

शंकर – *(ध्यान करके देखते हैं, फिर चौंक कर कहते हैं)* विष्णु भगवान का अवतार हो चुका। उससे भारत का उद्धार होगा। ऋषि संतानों का निस्तारण होगा। विदुरजी की नीति दमन को तोडेगी। अनीति का चिह्न भी पृथ्वी पर न छोडेगी। नीतिज्ञ वह इस देश मे पुरुषार्थ करेगा, भारत को कर्म अपने से कृतार्थ करेगा।

यमराज – *(चकित होकर)* तो क्या पृथ्वी का भार उतारने और भक्तों को तारने के लिये अवतार हो चुका। इस घोर अंधकार में भी नीतिज्ञ का चमत्कार हो चुका ?

शंकर – हां ! महाज्ञानी और नीति परायण श्री कृष्ण ने अवतार ले लिया है और महात्मा विदुर जैसे नीतिज्ञ ने भारत उद्धार करने का वचन दे दिया है।

यमराज – क्या भू-मंडल की पवित्र भूमि की हीन दशा को सुधारने का बीडा उठाया है ?

शंकर – हां ! श्रीकृष्ण का उपासक बन भारत-उद्धार करने का बीड़ा उठाया है।

यमराज – धन्य ! तब तो ऐसे महात्मा के दर्शन से कृतार्थ होना चाहिये और उनकी सहायता कर जन्म सफल बनाना चाहिये।

शंकर – तथास्तु।

(द्यून बजती है। थोड़े से अंतराल पर पुनः दृश्य)

वसुमति – *(सपने में अंगड़ाई लेकर)* हा ! साक्षात् कामधेनु गौ माता भारत का त्याग कर गई। धर्म भी देवभूमि को त्याग गया। *(जागकर)* ठहरो-ठहरो, गौ माता ! मत जाओ। हा ! कैसा करुणाजनक सीन था। सत्य आत्माओं की सहायक ऋषि-मुनियों की उपकारक गौ माता, वेद विख्याता कामधेनु और धर्म देव, लोप हो गये ! भयानक रूप से भारत में महा विकराल कलियुग का प्रवेश हुआ। अमृत में विष का समावेश हुआ। हा ! हा !

डर से अत्याचार क हा धर्म गऊ जाती रही,
और भारत वर्ष की सब आबरू जाती रही।
धर्म और गऊ पर ही भारतवर्ष की उम्मीद थी,
है वृथा वह पुष्प जिसके रंग व बू जाती रही।
प्यारे भारत वर्ष में अब क्या जवाल आने को है ?
सत्य और नीति यह सब कुछ यहां से उठ जाने को है।
जिस मही पर यज्ञ पूजा पाठ का व्यौहार था,
क्या वहां सत्ता कलि अब अपनी दिखलाने को है।।
पाप, महापाप।

शंकर – *(साइडिंग से)* इस महापाप का विकराल रूप देखना हो तो कौरव सभा को देखना जहां दुर्योधन धर्म की आड़ में पाण्डवों का सर्वस्व हरण कर उनको चौदह वर्ष का बनवास देगा।

वसुमति – *(इधर-उधर देखकर चकित होकर)* हैं ! कौरव राज्य में यह अंधेर होगा।

शंकर – *(साइडिंग से)* नहीं। अभी कुछ नहीं बिगडा। दुर्योधन अपनी दुष्टता का प्रभाव सती द्रौपदी पर डालेगा और दुशासन का क्रूर हाथ पति-परायणा के पतिव्रत धर्म पर उठेगा। इसलिए वह न्यायालय अन्यायशाला बन जायेगा।

वसुमति – *(थोड़ी देर तक इधर-उधर देखकर)* यह आवाज किसकी है ? कैसी हृदय विदारक है ? जिस राज का निवास देवताओं के लिये सौभाग्य था वहां ऐसा अत्याचार। द्वापर में कलियुगी व्यवहार। क्या सती अबलाओं पर ऐसा अनर्थ हो सकता है ? श्री कृष्ण उपासकों का तप व्यर्थ हो सकता है ? कौरव-कुल-यश की हंडिया क्या सरे दरबार फूटेगी ? गहरी अन्याय की बिजली सती के सर पर टूटेगी।

विदुर – *(दाखिल होकर)* नहीं।

जब तक विदुर जीता है, अनर्थ न हो सकेगा।
कौरवों का पांडवों पर वश न चल सकेगा।
मेरे जीते पांडवों पर बलात्कार नहीं हो सकता।
धर्म के आकाश पर पाप का सूर्य नहीं तप सकता।
धर्म की रक्षा को मेरे प्राण भी तैयार हैं।
धर्म की वेदि पै सुख जीवन के सब बलिहार हैं।
बाल बांका कर नहीं सकता है कोई धर्म का।
सत्य और नीति के जब तक कब्जे में हथियार हैं।

वसुमति — तो तैयार हो जाओ।

विदुर — किसलिये ?

वसुमति — धर्म रक्षा और जाति सेवा के लिये।

विदुर — तैयार हूं, परंतु आज तुझे व्याकुलता क्यों है ?

वसुमति — प्राणनाथ ! मैंने स्वप्न में गौ को भागते, धर्म को पुण्य-भूमि त्यागते देखा है और आकाशवाणी ने मुझे सावधान किया है कि दुर्योधन ने पांडवों के नाश का अंतिम बीडा उठाया है। वह यज्ञ शाला से झल्लाया है और इसलिये निश्चय किया है कि जूए में उनका सर्वस्व हरण कर सती द्रौपदी पर अत्याचार और बलात्कार करेगा।
सत पै आंच तो, धर्म क्या रह जायगा।
यश का बेड़ा पाप के सैलाब में बह जायगा।
गर पतिव्रता का दामन, रंच भर नष्ट हो जायगा।
शाप से समझो कि कौरव वंश नष्ट हो जायगा।

विदुर — नहीं, ऐसा न हो सकेगा। यदि पांडवो पर ऐसे बलात्कार की सम्भावना होगी तो मैं अपनी नीति के उपदेश से वेगगामी पाप के बादलो को छिन्न-भिन्न कर डालूंगा।
सच बात पर डट जाऊंगा मैं, धर्म के बल से,
यमराज से भिड जाऊंगा मैं धर्म के बल से।
दुष्टो को कुचल डालूंगा मैं सत्य के बल से,
पाप अग्नि बुझा दूंगा मैं कर्तव्य के जल से।

वसुमति — हां, पांडवों की आज तक आप ही ने रक्षा की है। यदि तुम्हारे होते उन पर आंच आयेगी तो तुम्हारे मन्त्रित्व की उज्ज्वल कीर्ति धूल में मिल जायेगी।
रण मे लडना चाहिये, गर पूर्वजों की शर्म है।
पक्ष लेना धर्म का, धर्मात्मा का धर्म है।

विदुर — मैं अपने पुरुषार्थ से धर्मवीर पांडवों की रक्षा करूंगा और नीति और धर्म के वास्ते अपने प्राण भी न्यौछावर करूंगा। भारत की पवित्र भूमि पर शांति की निर्मल गंगा बहाऊंगा। अपने सत्य के बल धर्म को पूर्ण बनाऊंगा।
मैं भारतवर्ष में इकबार फिर सतजुग दिखाऊंगा,
अधर्म अन्याय की जड को मैं सतबल से हिला दूंगा।
धर्म और नीति का शासन मैं भारत में चलाऊंगा,
मैं पापी कौरवो के पाप की कश्ती डुबा दूंगा।

धर्म के बाहुबल से पाप के हृदय को फाडूंगा,
मैं झण्डा सत्य का उत्पात की छाती मे गाड दूंगा।।

वसुमति – परन्तु मुझे भय प्रतीत होता है।

विदुर – ऐं ! क्या कहा ? क्या मैं मंत्रित्व पर धर्म को बलिदान कर सकता हूं ? स्वर्ण के बदले ठीकरियों का सम्मान कर सकता हूं ? मान और मरतब का चलता जादू क्या मुझको मोहित कर सकता है ? सुनहरी और रूपहली युक्तियों का विचार क्या मेरे हृदय में फैल सकता है ? नहीं, नहीं। धन-धाम का मोहिनी मन्त्र मुझको वशीभूत नहीं कर सकता। वेतन और पारितोषिक अथवा उदर पालना एक धार्मिक पुरुष को धर्म से नहीं हटा सकते। फौलादी तलवार पत्थर के जिगर को घायल नहीं कर सकती।

कभी डाला नहीं जाता है जाल सोते शेरों पर,
असर करती नहीं है, मौत की धमकी वीरो पर।
धर्म की आंख दौलत पर कभी ललचा नहीं सकती,
कभी अमृत को तजकर विष का भोजन खा नहीं सकती।

वसुमति – तो क्या राजसी ठाठ और सम्मान निरर्थक हैं ?

विदुर – हां, धर्मात्माओं को सत्य-मार्ग से यह सभी डिगा देने को सहायक हैं परन्तु धर्मात्मा इन पर लात मारता है। धर्म और नीति के लिये महलों को त्याग, झोपडी में रहता है। भिक्षुक बन सूखे टुकडों पर गुजर करता है परन्तु चाटुकारी-चिकनाई प्रयोग नहीं करता। मैं कभी असलियत को न छिपाऊंगा। न होगा यह कि किसी भय-वश न्याय के विरुद्ध जिह्वा न हिलाऊंगा।

उद्योग और पुरुषार्थ से दुनिया में क्या मिलता नहीं,
और मिलता है सब, पर धर्म इक मिलता नहीं।

वसुमति – यदि तुम्हारी नीति मंत्रित्व पर कष्ट लायेगी ?

विदुर – तो मैं उसको सहर्ष सहन कर जाऊंगा।

वसुमति – यदि सती पर क्रूर हाथो से कुछ आंच आयेगी।

विदुर – तो, उसके सतपन की शक्ति उसे बचायेगी।

वसुमति – तो, प्राणनाथ ! जाओ, धर्मवीर ! जाओ, भारत की रक्षा कर प्रजा का दुख मिटाओ।

गाना

वसुमति – पिया जाओ, सिधारो, पधारो, करो देश उद्धार,

विदुर – मिटाऊंगा, हटाऊंगा सब अत्याचार।

वसुमति – तब जाओना, प्राण आधार।............................।। टेक।।
करोना रण क्षत्रिय बन जाकर निछावर प्राण चरणो पर।
त्याग दो अपना तन-मन-धन सभी भारत के चरणो पर।
सुहागन होके भी मैं खुश नहीं रह सकती।
जीते जी जो अत्याचार हो भारत के धर्म और आदर्शों पर।

विदुर – करूंगा देश उद्धार।

वसुमति – हरो पिया क्लेश अपार, पिया जाओ, सिधाओ.....

⊛ ⊛ ⊛

कॉमिक नं. 1

पदमा – *(खुद ब खुद)* साबहूं मिल'र अनेबल (ऑनरेबल) बणणूं चाहिजे। *(रुक कर)* पण खैर पैली ई जमादारजी सूं मिलणूं चाहिजे। *(रुक कर)* पण इसी नहीं हुवै कै बेटो रुपयो मांगण लाग जावै। पण अनेबल बण्यां हूं तो रुपया लागे रो धोखो कोई नीं। *(जाहिरा)* राम-राम जमादारजी ! राम-राम।

खानसामा – *(बात काटकर)* कौन है ? जावो, साहब अभी मौका देखने जाएगा। उन को मिलने का वक्त नहीं है।

पदमा – (खुद ब खुद) बेटो रुपया रै वास्तै गुर्रावै है। पण एक'र तो यूँ ही कहणो चाहिजे। *(जाहिरा)* तो जमादारजी.....

खानसामा – *(झिड़क कर)* चलो–चलो, निकलो यहाँ से। साहब को मिलने का वक्त नहीं है।

पदमा – (खुद ब खुद) बेटो अब लूद्‌यौं बिना को रेवैनी। *(रुपया दिखाता है)*

खानसामा – *(गुस्सा करते हुए)* तू क्या रिश्वत देना चाहता है। चला जा वरना अभी गिरफ्तार करा दूंगा।

पदमा – *(घबरा कर काँपता है)* र.....र..... रिश्वत कोय नीं बख्शीश है, क्यों घींसिया ठीक है नी।

खानसामा – *(नुमाइशी गुस्से के लहजे में)* बख्शीश ऐसा होता होगा ! कभी तुम्हारे बुजुर्गों ने भी दिया होगा !

पदमा – बेटो बहानोंबाजी करै, दस रुपियां सूं घाट लेवतो को दीखै नीं पण पैलां पांच ही दिखाया चाहिजे *(जाहिरा)* तो जमादारजी ! *(पांच रुपये दिखाता है)*

खानसामा – *(नरमी के साथ)* आज साहब को वक्त नहीं है मगर खैर आज आप आ गये हैं तो बैठ जाइये। साहब निकलेगा तो मिला दूंगा। *(खुद ब खुद)* मगर इससे कुछ और लेना चाहिये *(जाहिरा)* मगर सेठजी साहब से आपके दुश्मन बहुत बुराई करते थे और साहब खफा होते थे।

पदमा – *(घबरा कर)* अरे घींसिया अबै क्या करूं। लोग म्हारी चुगली करै, अबै साहब सूं को मिलूं नीं, क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?

खानसामा – *(रुककर)* अजी सेठजी कहां जाते हो ? क्यो डरते हो ? आखिर हम तो आपके गुलाम हैं। हमने तो साहब से उसी वक्त कह दिया कि सेठ बहुत अच्छा है। ये लोग उसकी दौलत और इज्जत देखकर जलते हैं।

पदमा – *(खुश होकर ठहरता है)* ओ ल्यो थांरो इनाम। जद पछै साब कंई कैयो ? क्यू घींसिया ठीक है नीं ?

खानसामा – अजी कहते क्या ? ये लोग तो हमारे हाथो की कठपुतलियां हैं। हम वक्त-बेवक्त जैसी जिसकी चाहते हैं, जमा देते हैं और जो चाहते हैं करा देते हैं और अगर इत्तफाक से इन लोगों ने जरा भी चूं की तो मेमसाहब से कान गर्म करा देते हैं, फिर तो करना ही पडता है।

पदमा – हां, हां, थांरी क्यूं मानै नी ? *(रुककर)* जमादारजी कीं फायदो तो म्हांनै ई करावो। क्यूं घींसिया ठीक है नी ? घणो नहीं तो अनेबल तो बणाई द्यो।

खानसामा— हां, हां, क्यों नहीं। रुपिया खर्च करो, सब कुछ हो सकते हो।

पदमा — रुपिया री आपणै ग्यान-गिणती कोयनी पण काम बणणो चाहीजे। ओ लो, थांरो इनाम। म्हारी अरजी पेश करद्यो। क्यूं घीसिया ठीक है नी ?

खानसामा— *(साइड में देखकर)* तो अब साहब आते हैं मिललो और अर्जी भी इस वक्त दे देना। *(पदमामल को एक तरफ खड़ा करके साहब से)* हुजूर ! यह सेठ पदमामल हैं और हुजूर से सलाम करना चाहते हैं।

पदमा — *(साहब को देखकर सिकुड़ता है और घबरा जाता है)* हुजूर.....

साहब — ए ! यू काला आदमी, तुम ऐसा क्यूं बोलता है ?

पदमा — हुजूर ! वळता कैवे है कै अनेबल नहीं बण जावै। ई वास्तै चुगली खावता फिरै है। क्यूँ घीसिया ठीक है नी ? और हुजूर, म्हारी नहीं मानो तो घीसीयै नै पूछलो। क्यूं घीसिया ठीक है नी ?

साहब — वैल, घीसिया कौन है ? *(खानसामा से)* यह क्या बकता है ?

पदमा — हुजूर, घीसियो भोत अकलमंद आदमी है। क्यूं घीसिया ठीक है नी ? हुजूर, घीसू मिल घणांई राजी होसी। क्यूं घीसिया ठीक है नी ?

साहब — ओ ! तुम अपना मतलब बोलो, हम घीसिया से मिलना नहीं मांगता।

पदमा — नहीं हुजूर। घीसीया सूं तो जरूर मिलो, भोत अक्लमंद है। क्यूं घीसिया ठीक है नी ? *(पदमा ठोकर खाकर गिरता है, पगड़ी बिखर जाती है)*

साहब — ओ नानसैंस, खानसामा ! टेक अवे दैट डेविल्स फेस, आई से।

पदमा — *(उठता है और गिर पड़ता है)* सरकार नै रामजी लाट साहब करै। राम बादशा करसी। क्यूं घीसिया ठीक है ?

साहब — ओह ! व्हाट ए डेविल यू आर ? ऐसा मत बोलो। हम बादशाह होना नहीं मांगता।

पदमा — नहीं, नहीं, हुजूर, भूलग्यो। हुजूर नै रामजी शहजादा और अनेबल करसी। क्यूं घीसिया ठीक है नी ? और हुजूर चावो तो घीसिये ने बूझ लो। क्यूं घीसिया ठीक है नी ?

खानसामा— *(चुपके से)* अर्जी क्यों नहीं देते। *(पदमा कांपता, कांपता अर्जी सामने करता है)*

साहब — वैल, इसमे क्या लिखा है।

पदमा — आ, अनैबल बणनै री दरखास्त है। क्यूं घीसिया ठीक है नी ?

साहब — *(खानसामा से)* वैल, दरख्वास्त ले लो।

पदमा — आही दरखास्त जाणी चाहीजे। क्यूं घीसिया ठीक है नी ?

साहब — *(नौंक चढ़ाकर)* ओह। व्हाट ए फूल ही इज ? गेट हिम आउट।

खानसामा— *(आगे होकर पकड़ता है)* बस-बस, साहब से बात हो गया। अब जाओ। *(साहब और खानसामा चले जाते हैं)*

पदमा — हाय, हाय ! अनेबल बणण रै वास्तै छोटै साव, बडै साव, दरोगाजी, जमादारजी सगळा रै कनै जाऊं, पगां ऊपर पागड़ी मेलूं, हाथ जोडूं। कालेज बणवाया, मारक बणवाया, थ्येटर बणवाया, होटल बणवाया पण अबै तांई अनेबल को बण सक्यो नी और न चापलूस बहादुर बण सक्यो। अक्के बरस कीं न कीं बणूंला। अक्के ही नीं हूयो तो जहर खा लेसूं, मर जासूं और भारतवर्ष की ईज्जत धूळ में मिला देसूं।

गाना

करै म्हांनै एसिंबली री मैम्बरी खराब, नहीं हाथ आवेरै,
कालेज और पारक, थ्येटर–होटल, हाल–व्हाइट वणायो
रुपिया लुटाय अर मानखो गमायो
म्हारे जिसां री इज्जत जावै, नहीं आवै एसिम्बली में बैठ र जवाब
नोट एबल, अनेबल फैशनेबल हूं मैं, पार्टी में बैठ पीऊं गट–गट शरा
नहीं लाज आवै रै।। करै म्हानै ....।।

कामिक नं. 2

(स्वामी का गाते हुए दिखाई देना)
बनो भोंदू हुजूरन की दुम।
सुख चाहो तुम जी का यार।।
पार्टी मे जाओ, हवा बागन की खाओ,
पेटन की पूजा से मन को रिझाओं।
हरदम जवान पै रखो, जी हां, हुकुम।। बनो.....।।
डाली चढाओ, मौजन उडाओ,
हाकिम के संग बैठ डिनरन को खाओ ;
हां हां ! कहो बन बुद्धि तजो।
कहो हरदम खुशामद को तुम, वैल्कम। बनो.....।।
(स्वामी का चला जाना)

घींसिया – *(हँसता है)* दुनियां ठगे मक्कर से और रोटी खाये शक्कर से। *(हँसता है)* दुनियां कहत है कि खुदगर्जी छोन्ो, खुशामद से दूर रहो पर वे भी नाहीं जानत हैं कि सब खुशामद करत हैं फिर हम ही का बुरो करत हैं ? खुशामद क्या बुरी चीज है ? या धर्म की बराबर तो कोऊ धर्म नाहिं। अपने आपको जाने बिना ईश्वर को नाहि पहचान सकत। याही से हम खुशामद को भी ध्यान रखते हैं और मान-मर्याद सब कुछ त्याग दीन हैं। झूठ, धोखा और फरेब के ऐसे-ऐसे पोइन्ट बदलत हैं कि गाडी ठीक आय लगत है। कबहू लीडर, प्लीडर और हाकमन को डोली चढावत हैं और मजा उडावत हैं। एक ही साधे सब सधे, सब साधे सब जाय। यी वास्ते धर्म और ईमान की एग्जीवीशन को स्वार्थ की पालिसी के अधीन कर खूब पैर पुजवाओ। ग्रेज्यूएट हूवन से आदमी इज्जतदार नहीं बन सकत है। देखो, हम पहले घीसिया रहे और दो आने रोज से ज्यादा, घास मे, कबहू नहीं मिले पर अब जब से हमने जी-हुजूर और जो-हुकूम को जाप कर स्वार्थ में सुरती लगाई है तब से सैंकडों और हजारो रोज आत हैं और खूब कमाय लेत हैं। अब हम भी काम के सिविल सर्जन बन गये हैं। बडै आदमियन को आजकल हमारी बडी जरूरत रहत है। मुकद्दमा जीतना हो, तरक्की लेना हो, नौकरी करना हो, गर्जे के दुनियां की कोई चीज लेनी हो तो हमारी आराधना करो। हमारे शिष्य बनो, तो हम तुम्हारी सिफारिश कर सकत हैं तब तुमहू को दूध-मलाई मिल सकत है। *(रुककर)* आजकल सेठ पदमामल और वा को बेटा स्वेच्छा दोनों एक साधु के हाथ फंस गये हैं। यी वास्ते अब हमू उनके ए.डी.सी. बन गये हैं और

ड्यूटी करने की तिजारत है। *(चौंककर)* कोई आवत है। *(साइडिंग में देखकर)* वोही मूर्खन को सरदार, खितावन को बीमार, बुढापे में ब्याह को भूत सवार, सेठ पदमामल आवत है। याकी बातें सुनना चाहिए। *(छुपता है)*

पदमा – *(दाखिल होकर)* सुनो। सारे सारपैकीटल जेन्टिलमेन। हूँ कालका मेल ईंजन री तरह फूक फूक'र थांनै नोटिस देवूं हू कै अबै सभी बदलीजग्यो। क्यों घीसिया ठीक है नी ? अरै धन कमाय बिना अज्जत (इज्जत) को हूवैनी। ई वास्ते हुँई दिवाळो काढ मजिस्ट्रेट वणग्यो। अबै थे ही की वणजाओ। साइन्स में नांव करणो होवै तो एडीसन बणो चाहे जरमन वण जाओ। लडनो होवै तो नेपोलियन वण जाओ और मूरख रह'र पूजा करवाणी होवै तो धरम रो झण्डो ले'र कथा बांचणै लाग जावो।

घीसिया – *(साइड में, पब्लिक से)* और जेल जाना चाहत हो तो पागल बन जाओ।

पदमा – और धनवान बनना होवै तो दिवालिया बन जाओ। क्यों घीसिया ठीक है नी ?

घीसिया – *(पब्लिक से)* देखो सेठजी रुपिया कमावन की कैसी अच्छी तरकीब बतावत है।

पदमा – और कंगाल लेन री सैर करणी होवै तो नाटक कम्पनी रा मैनेजर बण जाओ। क्यों घीसिया ठीक है नी ? *(मुड़कर देखता है)* घीसिया, घीसिया, ओ घीसिया !

घीसिया – *(अन्दर से)* कौन है ? काहे चिल्लावत है ?

पदमा – देखो तो रांड रै काचै नै, म्हारो ही तो नौकर अर म्हांनै ही धमकावै। *(जाहिरा)* जद पछै क्या, बाहर आवै नी रांड रा गधा।

घीसिया – गधा घर में नांही रहत है, बाहर रहत है।

पदमा – जद पछै क्या ? ओ तो म्हांनै कांई समझै कोयनी। अबै ईनै आंख दिखाणी चाहीजे। *(दोनों हाथों से आंखें फाड़कर दिखाता है और घीसिया डंडा मारता है)* ओ रै! रांड रा काचा, थारै सेठ नै ही मारै क्या ? मनै पिछाणै ही कोयनी क्या ?

घीसिया – अरे सरकार ! अरे सरकार ! तुम्हारे डंडा कैसे लग गया ? हमतो गदहा के मारते रहे।

पदमा – अरे, थारी बुद्धि कठे निस्तरगी ?

घीसिया – सरकार, हमारा दिमाग तो अब तक पारक में हवा खावन को गया रहा सो लौटा ही नहीं।

पदमा – अरे, आंधा दीखै कोयनी क्या ? पण खैर, अबै तूही की वणसी।

घीसिया – हम तो बन रहा है।

पदमा – अबार तो आदमी वणियोडो है।

घीसिया – तब क्या जानवर बनाना चावत है ?

पदमा – नहीं।

घीसिया – तद क्या नाजर बनावन को विचार है ?

पदमा – जद पछै क्या, तू म्हारै सामो बोल्यां जावै ? जाणै कोयनी हूं मजिस्टेर हूं अर तु म्हारो चढफासी है । क्यूं घीसिया ठीक है नी ?

घीसिया – *(स्वगत)* देखा, मजिस्टेर कैसी बोली बोलत है ? *(प्रगट)* सरकार, चढफारी होने से हम काहे नटत है ?

पदमा – जद पछै क्या ? म्हारी डाक तो को ल्या देवैनी ?

घींसिया — सरकार ! आज तो एक ही रोटी आया रहा।

पदमा — जद पछै क्या ? तू म्हारो चढफासी हुय गलत बोलै। क्यूं घींसिया ठीक है नीं ? आ रोटी है'क ईं नै चिट्ठी कैवै चिट्ठी !

घींसिया — ऐसा तो बहुत आदमी लावत हैं।

पदमा — जद पछै क्या ? वै कठै है ? बांनै ला देवै क्यूंनी ? क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?

घींसिया — सरकार, वो नाहिन रहा ?

पदमा — कठै ग्या ? क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?

घींसिया — वा से तो हम चूल्हा जलावन को काम लेत रहे।

स्वेच्छा — *(दाखिल होकर)* अगर इस तरह जेंटिलमैन का लैटर्स चूल्हे के लेटर बॉक्स में डालेगा, तब याद रखो तुम किकिंग (Kicking) का सर्टिफिकेट पायेगा।

घींसिया — सरकार, हम साडीसफैटी नाहीं लेत। हम वाको का करहिं ?

स्वेच्छा — ओ हो ! साड़ीसफैटी नहीं, हम सर्टिफिकेट बोलता है। इसके बिना कोई इज्जत नहीं मिलता।

पदमा — जद पछै क्या, ऐसो हो सकै है ? नहीं हो सकैनी। क्यूं घींसिया ठीक है नीं ? सर्टीफिटी किसो मैडल सूं बढ़ सकै है ?

स्वेच्छा — *(खुद ब खुद)* ओ हो! फादर क्या बेवकूफ है ? *(जाहिरा)* प्रेजेंट टाइम में तो सर्टिफिकेट वाला ही ढूंढा जाता है और एडवरटाइज में भी सर्टिफिकेट का ही टर्म्स (Terms) कम्पलसरी रहता है।

घींसिया — हां, ठीक कहता है। खुशामद को बाजार गर्म हो रैयो है, मातृकुलनाश नाहिन. बी.ए. या के नीचे दबत है।

पदमा — क्या बाझ लुगाई सर्टीफिटी सूं बच्चावाली और बांझ बकरी दूध देवन वाली मानी जा सकै है ? क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?

स्वेच्छा — हां, सर्टिफिकेट होने पर कम्पलसरीली मानना पडेगा। सर्टिफिकेट हॉल्डर अनवाइज नहीं कहा जा सकता।

पदमा — इसी को हो सकै नी। घणा ही बी.ए. पास चाळीस-चाळीस रुपल्ली मांय नौकरी करता फिरै है। अकल ही होवती तो थांनै किसी कुरसी खारी लागती ? क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?

स्वेच्छा — तब क्या तुम हमकूं बेवकूफ समझता है ? एक डिगरी का इस तरह ओपनली इन्सल्ट करता है ?

पदमा — जद पछै क्या ? अकल ई होवती तो कमा-खावतो ई नी। मनै देख हूं अंग्रेजी बिना ही मजिस्टेर होग्यो।

स्वेच्छा — *(स्वगत)* ओ हो ! व्हाट ए फूल ही इज ? इतना रौंग बोलने पर अपने को वाइज समझता है। *(प्रगट)* वैल फादर, तुम्हारा तो प्रोउनशिएशन ही ठीक नहीं, तुम एबल कैसे हो सकता है ?

पदमा — जद पछै क्या ? हूं तो अनेबल होणै वाळो हू। तू मनै बेवकूफ समझै क्या ? देख तो घींसिया, ओ छोरो क्या कैवै है ? क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?

स्वेच्छा — वैल फादर, तुम छोरो कैसे कहता है ? आपको एटीकेट स्ट्रिक्टली आब्जर्व करनी चाहिए।

पदमासेठ — जद पछै, तूं छोरो कोनी तो क्या म्हारो बाप है ? क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?

स्वेच्छा – वैल फादर, तुम अक्ल में बडा नहीं हो सकता। डिग्री को मानना ही पड़ेगा।
पदमा – डिग्री म्हारै माथै करासी। कांई बात री करासी ? ओ चढफासी ! अबार री अबार म्हारै मुंशी नै ले आ। जुर्मानो करा'नै डिग्री को मजो चखाऊं।
घींसिया – याके वास्ते वाकी क्या जरूरत है ? तुम हुकम दे सकत हो।
पदमा – जद पछै क्या, बैंरी सलाह बिना हुकम दे सकूं क्या ?
घींसिया – जरूर दे सकत हो।
पदमा – और वो नहीं मांणे जद पछै कांई करां ?
स्वेच्छा – *(खुद ब खुद)* ऐसा आदमी जो दूसरे के अधीन हो, क्या कर सकता है ? *(जाहिरा)* नहीं। तुम बिना ओफेन्स के कुछ भी नहीं कर सकता।
पदमा – तू म्हारी मजिस्ट्री नै को जाणै नी। मैं घणा ई नै कैद कर नाख्या। तू ईयेरी क्या कैवै ? म्हारै अख्त्यार तो ईंया निराला ही चालै है। क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?
स्वेच्छा – हा, हा, क्या अन्धेर। *(सर को पकड़ कर बैठ जाता है)*
पदमा – अरे घींसिया ! तनै ठा है के रमाबाई रै चैक रा रुपिया चूकती हूया के नहीं।
घींसिया – सरकार ! हम पहले ही बोला रहा के इस साल घाटा है। रण्डी-मण्डी को एकदम नाहीं चूक सकत है।
स्वामी – *(झाँककर)* राम आसरे, वाह-वाह, क्या तन्दुरुस्ती पाई है। ऐसा प्रतीत होता है कि सेठजी ने पहाड़ों की सैर की है, राम आसरे।
पदमा – थांनै कंई ठा पड़ी ? क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?
स्वामी – राम आसरे, आपके गालों की सुर्खी आंखों की चमक और शरीर की काठी से विश्वास होता है कि यह गुलाबी मुखड़ा पहाड़ पर जाये बिना नहीं खिल सकता, राम आसरे। आप पर जोबन फटा पड़ता है । आप तो नौजवानों से भी अधिक तन्दुरुस्त मालूम होते हैं, राम आसरे।
पदमा – *(खुद ब खुद)* सैर तो करी नी पण जवान दीखूं हूं। अयी वास्ते नटणो नहीं चाहीजे। *(जाहिरा)* म्हारी उमर तो साठ बरस सूं ऊपर है।
स्वामी – राम आसरे, केवल साठ ! तब तो पूरण युवावस्था है। इसी अवस्था में जोबन निखरा करता है। राम आसरे।
पदमा – पण कोई तो बतावै है, चाळीस बरस तांई ठीक रहवै। क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?
स्वामी – राम आसरे, पर आपके वास्ते तो साठ ही ठीक है, राम आसरे, उमर से क्या मतलब है । सूरत चाहिये सूरत, राम आसरे।
पदमा – तो जवान होय मनै क्या लेणो है ? क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?
स्वामी – राम आसरे, लेना क्या है । मौज करो और आनन्द उड़ाओ। ईट ड्रिंक एण्ड बी मेरी, टूमारो यू शैल ड्राई और शास्त्रों का भी कथन है–

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत् । ऋणं कृत्वा, घृतं पीवेत्।।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनम कुतः ?

घींसिया – *(खुद ब खुद)* देखो। अब यह हमारे बीमार को गाठनो चाहत है।
पदमा – तो क्या ई उमर रै मांई ब्याव होय सकै है और छोरी मिल सके है ?
स्वामी – राम आसरे, उमर का तो आपका भ्रम है। बुद्धिमान कन्यायें तो ऐसे उम्र वालों को पसन्द करती हैं, राम आसरे। क्यूंके विवाह के पश्चात् उनको

तुरन्त ही सैल्फ गवर्नमेंट मिल जाती है और राम आसरे, जबान से तो केवल वोही ब्याह करती हैं जिनके मस्तक में दासता कूट-कूट कर भरी है, राम आसरे।

पदमा — तो क्या, इसी चोखै विचारां री छोरी मिल सके है ? क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?

स्वामी — राम आसरे, हां, श्रीमती निर्मलजी देवी ऐसे ही विचारों की हैं।

पदमा — जद पछै क्या बा राजी है ?

स्वामी — राम आसरे, राजी करना क्या मुश्किल है ? रमू क्रीयाणाम् धातू से स्नेह करना तो हमारा कर्त्तव्य है।

घींसिया — सरकार, बुढापे में ब्याह करनो तो ठीक है पर कबहू बिगडने का डर लगता है।

स्वामी — राम आसरे, डर करने की कोई बात नहीं है। जो होता है वह अवश्य बिगडता है।

पदमा — *(गुस्सा होकर घींसिया से)* जद पछै क्या, सामीजी कैवे ब्याव और करणो चाहीजै। पण स्वेच्छा ई ब्याव हूं राजी होतो को दीखैनी।

स्वेच्छा — *(खुद ब खुद)* आह शायद हमारी मैरिज का बात होता है *(उठकर)* हां, हां ! मैं भी आपसे यही कहने आया था।

पदमा — जद पछै क्या ? हूं तो आप ही विचार करियो है।

स्वेच्छा — मगर मैरेज पर मां-बाप का विचार नहीं......

पदमा — बात काटकर। बस-बस, तरै उपदेस री जरूरत कोनी। म्है टाबरां रो भलो ही चावां। ई रै मांई टाबरां नै अगर-मगर नी करणो चाहीजे। क्यूं घींसिया निरमळजी तेरी देखियोडी है ?

स्वेच्छा — हां।

घींसिया — हां सरकार, वो बौत फांशनेबल है। उसका चाल एकदम नया है।

पदमा — जद पछै क्या है? बै हूं ब्यांव होणो ठीक है।

स्वेच्छा — बिल्कुल ठीक।

पदमा — घर रो कामकाज चोखी तरै अर कम खरच सूं चलायसी ?

स्वेच्छा — हां, जरूर चलायेगा।

पदमा — ई ब्यांव रै मांय खरच ई कम लागसी अर कंवरजी री सलाह ही मिल गई है, जद पछै महाराज, हूं ब्याव रै वास्तै राजी हूं। क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?

स्वेच्छा — ऐं।

पदमा — ऐं कांई होयो ?

स्वेच्छा — क्या आप अपना ब्याव करना चाहता है ?

पदमा — म्हारो नहीं तो क्या जद पछै थारो करणो चाहूं हू ?

स्वेच्छा — हैं ! *(सर चकराता है)*

पदमा — तू बोलो-चोलो जाय, ठण्डो पाणी पीले, पण देख बीं रै मांय खांड नी घाल लिये।

घींसिया — तब मिस्टर स्वेच्छाचारी का ब्याह कैसे होयन ?

पदमा — अबै पुनर्व्याह होण लागग्या। ई रै वास्ते मैं एक रांड रो विचार कर लियो है, बीं रै मांही आपणो खरचो कम लागसी।

स्वेच्छा — आह ! अब बर्दाश्त नहीं हो सकता। आई मस्ट रन अगेंस्ट हिम नाऊ।

पदमा — देखो बेटो ! आपरै ब्यांव हूं तो राजी होवै अर म्हारै हूं विराजी, दुनिया रै मांय /किसो सुवारथ आयग्यो है। क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?

घींसिया – हां, हां सरकार। ब्याव नाही करसो तो फेर रोवण को कौन रहे ?

पदमा – जद पछै क्या हूं बूढो होग्यो ? क्यूं घींसिया ठीक है नीं ?

घींसिया – या का इन्तजाम तो हमी कर सकत है, नहीं तो पडोसी करले।

स्वामी – *(खुद ब खुद)* अब शिकार निकलना चाहता है *(जाहिरा)* नहीं, नहीं सेठजी ! यह मूरख है, राम आसरे। स्त्री तो मिट्टी की भी ना छोडनी चाहिये और चिता में भी पूछा जाये तो हां भर लेना चाहिये क्योकि शास्त्र की आज्ञा है--

सिद्धमन्नं फलं पक्वं नारी प्रथम यौवनम्।
सुभाषितम च ताम्बूलं सद्यो ग्रहणात् बुद्धिमान् ।।

घींसिया – सेठजी। तुमको यह ठगनो चाहत है।

पदमा – जद पछै क्या, हूं सास्तरां री आज्ञा को मानूं नी क्या ? क्यूं घींसिया ठीक है नीं ? पण बीं नै मनै दिखादयो।

स्वामी – परन्तु राम आसरे, कुछ उसकी भेंट के लिये तो दीजिये। राम आसरे, तब आप देख सकते हो।

घींसिया – नहीं, रुपिया देकर ब्यांव नहीं करना चाहिये।

पदमा – अबार, हजार रो चैक ले जावो अर बोलबाला ऊठ जावो। जद पछै क्या कोई मनै बूढो कैय न सकै ? क्यूं घींसिया ठीक है नी ?

घींसिया – नहीं सरकार, बुढ्ढा नहीं, तुमको तो टाबर कह सकत है।

पदमा – **गाना**

बता बूढै री क्या देखी तूं म्हां में बात ?
हाथां में बळ है, ज्ञान में हूं तगडो,
काढ्या दिवाळा मैं बस पांच सात ।

घींसिया – मुंह मे तो सळ है, कमर में बळ।

स्वामी – धन में बळ तो है।

पदमा – जीसूं सै बळ हैं मात।

घींसिया - यह देखो है क्या जवानी की बात।

पदमा – करै है तूं क्यूं घींसिया म्हां सूं बकबाद ।

घींसिया – बोलत हैं सच्ची बात, बुद्धि नसात।

⊛ ⊛ ⊛

सीन दूसरा

(कौरवों का दरबार)

गाना

राज बढे, ताज बढे, शान बढे, आन बढे
विश्व के हो तुम आधार, सृष्टि के हो पालनहार।
ध्वजा का निशान बढ़े ।। राज.....।।

(राजसिंहासन पर धृतराष्ट्र बैठे हैं, भीष्म पितामह, शकुनि, दुर्योधन वगैरह राजपुरुष विराजमान हैं। पांच पाण्डव युधिष्ठिर वगैरह जूए में

राजपाट हारकर चौदह वर्ष वनवास की प्रतिज्ञा किए हुए द्रौपदी को हार चुके हैं। दुर्योधन जीत की खुशी मनाता है)।

दुर्योधन – आ हा ! आज खुशी का मुकाम है। पांडव भरी सभा में राजपाट ही नहीं, द्रौपदी को भी हार चुके हैं। इसलिये *(प्रातकामी की तरफ इशारा करके)* प्रातकामी ! उठो और द्रौपदी के महल में जाकर उसको ले आओ।

प्रातकामी – जो आज्ञा । *(जाता है)*

दुर्योधन – क्यों भीम ? अब क्या पेच-ओ-ताब है ? तुम्हारा क्या विचार है ?

भीम – अफसोस, अब मेरा विचार बेकार है। अदब और लिहाज के सिपाही खड़े हैं। मेरी अक्ल पर मोह के पर्दे पड़े हैं वरना अब तक–

हुई होती इन्हीं हाथों से तुझ नापाक की ढेरी,
जहां तू है पड़ी होती वहां इक खाक की ढेरी।

विदुर – आह ! अन्धेर, अन्धेर। ईश्वर तेरे इस राज में ऐसा भयानक अन्धेर।

भीष्म – धृतराष्ट्र। तुमने बहुत बुरा किया जो पांडवों को धोखा देकर बुलाया और बहुत निर्लज्जता से उनको हराया।

धृतराष्ट्र – मैं क्या कर सकता हूं ? होनी अमिट है। दुर्योधन के मोह ने मुझको अन्धा कर रखा है और वह मेरी कुछ नहीं सुनता।

भीष्म – अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। महात्मा विदुर की बातों पर ध्यान दो। द्रौपदी का सभा में आना बन्द करो।

विदुर – पूज्य पितामह ! मेरी बात तो इनको बुरी मालूम होती है, दुधारी छुरी मालूम होती है।

भीष्म – होनी ही चाहिए–विनाशकाले विपरीत बुद्धि।

विदुर – भाई धृतराष्ट्र ! यद्यपि तुम नेत्रहीन हो किंतु बुद्धिहीन नहीं। दुर्योधन के अन्याय यदि आपने देखे नहीं तो सुने अवश्य हैं, इसलिये जो कुछ हो चुका है, उस पर धूल डालिये अन्यथा समझ लीजिये कि द्रौपदी का सभा में आना कुरु-वंश के लिये काल को निमन्त्रण देना है।

द्रौपदी का यहां पै आना गर न रोका जायगा,
शीघ्र ही कुरु-वंश सारा नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।

धृतराष्ट्र – जाके पाव न फटी बिवाई वह क्या जाने पीर पराई।
भाई, तुम नहीं जानते कि पुत्र का मोह क्या होता है ?

विदुर – मोह, मोह ! कुपुत्र का, और मोह।

धृतराष्ट्र – तो आखिर मैं क्या करूं ? क्या हृदय को तोड़ सकता हूं, बेटे को छोड़ सकता हूँ ?

विदुर – हा, छोड़ दो, छोड़ दो। इस मोह रूपी जाल को ज्ञान के झटके से तोड़ दो। नीति का भी वचन है–

नालायक बेटा तजो, तजो स्वारथी यार।
निर्मोही माता तजो, तजो निर्लज्ज नार ।।
तजो निर्लज्ज नार, तजो संन्यासी कामी।
नौकर नमक हराम तजो, तजो अन्यायी स्वामी।।
गुरु लालची तजो, तजो चेला अनिष्टा।
पिता अधर्मी तजो, तजो नालायक बेटा।।

दुर्योधन – हा ! चाचाजी ! तुम्हें लज्जा नहीं आती ? जिस हांडी में खाते हो उसी में छेद करते हो ? हमारे मन्त्री होकर विपक्षी का पक्ष लेते हो ?

भीष्म – *(गुस्से में)* बस दुर्योधन, बहुत हो चुका। छोटा मुंह, बडी बात। क्या तूने यह राज्य बाहुबल से प्राप्त किया है जो यूं रोटी का ताना देता है ?

विदुर – पितामह ! मूर्ख और मानी को समझाना व्यर्थ है। ब्रह्मा भी अज्ञानियों को समझाने के लिये असमर्थ है। *(दुर्योधन से)* दुर्योधन ! यह रोटियां ही मुझको सच कहने और सत्-असत् बताने पर मजबूर करती हैं वरना मुझे क्या पडी जो मैं कुछ कहूं ? *(धृतराष्ट्र से)* हे राजन्। मैं अब भी कहता हूं कि यदि तुमने बुद्धि से काम न लिया तो जान लेना कि यही चिंगारी जिसको आप संघर्ष के द्वारा उत्पन्न करते हैं, तुम्हारे कुल को कपूर की तरह स्वाहा कर देगी।

चाहते हो गर कि हो कल्याण कुरु वंश का ।
त्याग कर दो आज ही इस दंश रूपी नस्तर का।

धृतराष्ट्र – *(भयभीत होकर)* भाई, यह बच्चा है। इसको क्षमा करो। *(दुर्योधन से)* अरे दुर्योधन, दुराचार को बंद कर और अपने चाचा की आज्ञा का पालन कर।

दुर्योधन – बस, इन्होंने बहकाया और आप डर गये। क्या किसी पर जय पाना दुराचार है ? संसार में विजयी होना अत्याचार है ? आप युधिष्ठिरराज से ही क्यों न पूछ लीजिये कि उन्होंने पासा डालकर द्रौपदी को हारा या नहीं ?

प्रातकामी – *(दाखिल होकर)* महाराज की जय हो।

दुर्योधन – क्यों प्रातकामी, वापिस कैसे आया, द्रौपदी को क्यों नहीं लाया ?

प्रातकामी – श्रीमान् मैंने आपका आदेश उसको सुनाया।

दुर्योधन – तो उसने क्या कहा ?

प्रातकामी – क्रोधाग्नि से उसका शरीर जलने लगा। मुख रक्तवर्ण हो गया। उसने मुझसे जो प्रश्न पूछे, मैं उनका उत्तर न दे सका। इसके अतिरिक्त वह अस्पृश्य है। उसके कपडा एक ही है।

द्रोण – निस्संदेह, ऐसी अवस्था में उसको बुलाना अविवेक है।

दुर्योधन – मुझे इसकी कुछ परवाह नहीं। उसको कह दो कि राज-अभिमान त्याग कर, दासता स्वीकार कर। *(प्रातकामी को खड़ा देखकर)* क्यों क्या विचार है ? क्या भीम और अर्जुन से डरता है ?

प्रातकामी – भय इनका नहीं, उसके सतीत्व का है। निर्बलों पर हाथ उठाना क्षत्रियों का धर्म नहीं, मदान्ध होकर अत्याचार करना हमारा कर्म नहीं। अबला पर हाथ उठाते मुझे लज्जा आती है। उसके सतीत्व के आगे मेरी वीरता झुक जाती है–

वहां जाकर के मिट जाता है, गौरव क्षत्रीपन का।
बदल देता है नीयत को ही, तेज अबला के सतपन का।।

दुर्योधन – *(गुस्से से)* तो जा चूड़ियां पहन कर घर मे बैठ। क्षत्रिय कुल पर कलंक न लगा। मेरे सामने से हट जा।

प्रातकामी – क्षत्रिय कुल को कलंकित मैं नही बल्कि तुम करते हो। तुम्हारे मन पर अन्धकार छाया हुआ है। अशुद्ध विचारों का बादल आया हुआ है–

दिल है स्याह तो भूल है हर इक बात में।
काली दिखाई देती है हर चीज रात में ।।

दुर्योधन – क्या तू नहीं जानता कि मेरी शक्ति क्या है ?
प्रातकामी – इसका उत्तर पराक्रम देगा।
दुर्योधन – क्या तू अपना धर्म पालन न करेगा ?
प्रातकामी – इसका उत्तर संसार देगा।
दुर्योधन – क्या अब भी बाज न आयेगा ?
प्रातकामी – क्षत्री कभी अबला पर हाथ न उठायेगा।
दुर्योधन – *(गुस्से से)* नीच तू देता है मुझको यों बराबर का जवाब।
प्रातकामी – मोम का है मोम और पत्थर का है पत्थर जवाब।।
दुर्योधन – *(कुछ शांत होकर)* प्रातकामी !
प्रातकामी – स्वामी !
दुर्योधन – द्रौपदी को घसीटने जाता है या अपनी जान गंवाना चाहता है ?
प्रातकामी – नीचता के जीवन से मौत श्रेयस्कर है। निर्लज्ज बनकर जीने से मरना बढ़कर है–

बदन हो टुकड़ा-टुकड़ा, ख्वाहा तन से जान निकल जाये।
नहीं परवाह है, गर सारा जहान मुझसे बदल जाये।।
नहीं मुमकिन मगर कर्त्तव्य पथ से क्षत्री टल जाये।
उठे गर हाथ अबला पर तो अवश्य गल जाये।।
सती पर आंख गर बदले तो आंखें सर्द हो जायें।
चले गर पांव उस जानिब को लें तो वे भी पत्थर हो जायें।।

दुर्योधन – *(हिकारत से)*– सूत का बेटा है, कायरता का यह अवतार है। द्रौपदी का भाग अब दु:शासन के ही आधार है। *(दु:शासन से)* जाओ और द्रौपदी को उसके लम्बे-लम्बे केश खींचते हुए सभा मे लाओ।
विदुर – ओ दुष्ट ! क्यों गाल बजाता है, क्यों अपना काल बुलाता है ? शेर मकडी के जालो में कैद नहीं हो सकता। द्रौपदी को तू दासी कहकर नहीं बुला सकता। हारा हुआ दूसरे को नहीं हार सकता।
भीष्म – आह ! दुर्योधन मदान्ध हो गया है। इसकी बुद्धि पर पर्दा छा गया है–

एक छोटा बुलबुला कितना हवा मे चढ गया।
जिसने था उसको बनाया उसके सर से बढ गया।।

(भीष्म और विदुर जाते हैं)

दु:शासन – *(द्रौपदी को खींचते हुए लाना)* अब सुख की सामग्री नहीं रही। महलों का सुख भोगने वाली और दासियों पर आज्ञा करने वाली नहीं रही किंतु तू स्वय अब दासियों की पंक्ति मे है–

देखले अर्जुन है पर गांडीव धारी अब नहीं।
गोकि बुत पांचों के हैं पर जीवधारी अब नहीं।।
शौक द्यूत में प्रतिष्ठा राज की सारी गई।
राज्य, धन और तू भी आखिर दाव पर हारी गई।।

द्रौपदी – बन्द कर अपने ज्वालामुखी (ग़ार) मुखार को। बन्द कर क्यों दुराचार करता है ? एक रजस्वला पर अत्याचार करता है–

कुछ दया आई न तुझको, आतताई की तरह।
खींच लाया बलि के देने को कसाई की तरह।।

धर्म बन्धन में जकड़ शेरों को इतराता है क्यों ?
निस्सहाय और दीन अबला को तू धमकाता है क्यो ?

दुःशासन -- मेरी नहीं तो तू अब राजा दुर्योधन की दासी है–
धन्य कर खुद को कि दुर्योधन की दासी हो गई।
पांच पतियों से तेरी जल्दि खलासी हो गई।।
एक पति से प्रेम कर, इतना सुभीता है तुझे।
इस सभा में आज दुर्योधन ने जीता है तुझे।।

दुर्योधन – हां ! जीता है और बड़ी मुश्किल से जीता है।

द्रौपदी – ओ दुष्ट ! यदि जीतने की शक्ति थी तो स्वयंवर में जीतना था। यदि भुजाओं में बल था तो सभा मे मछली को वेधना था।
आज तू बकता है क्यों, है किस पे इतराया हुआ ?
मृतप्राय क्यों स्वयंवर में था शरमाया हुआ ?
मुह मे क्यों भरता है पानी अब पराई चीज पर,
नीच कुत्ते की तरह हड्डी पे ललचाया हुआ !

दुर्योधन – *(हँसकर)* यदि वह स्वयंवर सभा थी तो यह भी चौसर सभा है–
नहीं चोरी इसी मैदान में हमने गोट मारी है।
बडी हिम्मत से शीशे में परी हमने उतारी है।।

द्रौपदी – ओ दुष्ट ! पातकी ! इस उज्ज्वल वंश को नष्ट न कर। अपनी असभ्यता से राजसभा को भ्रष्ट न कर। आकाश में दुर्ग न बना। निर्दोष अबला पर हाथ न उठा, अन्यथा याद रख तेरी मौत तुझे बुलाती है जो इस अबला पर अत्याचार कराती है–
तू विष को अमृत समझ रहा है, तू रेत मे भी है तेल समझा।
पतिव्रताओं का सताना है तूने बच्चों का खेल समझा।
तू अपनी शक्ति दिखा रहा है गरीब अबला को सताकर।
मैं क्या हूं तेरी विचार मन में निर्लज्ज लज्जा तो कुछ किया कर।

दुर्योधन – *(हँसकर)* काठ की तलवार से गर्दन नहीं कटती। तेरी बकवास से मेरी शान नहीं घटती। पाण्डवो का तुझ पे अब कोई अधिकार नहीं है। दासी का बनना क्या तुझे स्वीकार नहीं है ? *(दुःशासन से)* भाई दु.शासन ! अब देर बेकार है। यह बेपर्दगी की सजावार है।

दुःशासन – *(उठकर)* अब अभिमान को भूल जा और महाराज दुर्योधन की दासी बनजा कि जिसकी चतुर्दिक आलम में धूम हो रही है, वर्ना तू जानती है कि आज्ञा का पालन होगा।

द्रौपदी – ओ दुष्ट ! क्यों बक-बक करता है ? ऐसा प्रतीत होता है कि तेरे जीवन का प्याला भर चुका और अब शीघ्र ही छलकना चाहता है–
वही है जगत का स्वामी बचावनहार लज्जा का।
वही है दीन-रक्षक और पालनहार दुनियां का।।
तू निर्दयी निर्लज्ज है और हीन है आचार में।
तू दुराचारी है, जीवे दुष्टवत संसार में ।।
पानी-पानी हो रहा, लज्जा से है सारा शरीर ।
अँसुवन की धार ने रोका है आके मेरा चीर ।।

दुर्योधन — नहीं अश्रु हैं, ये अरमान दुर्योधन के निकलते हैं।
सभा-मंडप के छींटे आज आंसू बन निकलते हैं।

द्रौपदी — घटायें फटती हैं, सूरज का जब प्रकाश होता है।
चमकती जोत देख, उल्लू सदा निराश होता है।।

दुर्योधन — अब बता कि दुर्योधन अन्धा है कि अन्धे की औलाद–
सभा मंडप में क्या आई है साडी को उतरवाने ?
या धृतराष्ट्र के पुत्रों को जोवन आई दिखलाने ?

द्रौपदी — हां, मैं अब भी कहती हूं कि तू अन्धा है और अन्धे की औलाद है।

दुर्योधन — तो अब आंसू क्यों बहाती है ?

द्रौपदी — तुम्हें यह कहते लज्जा नहीं आती है ?–
जल रहा अपमान से मेरा है सारा तन-बदन।
हो रहा है रोम-रोम इस वक्त मेरा शोलाजन।।
एक तो पांडव हैं जिनका धर्म में सानी नहीं।
एक तू है कुल कलंकी आंख में पानी नहीं।।

दुर्योधन — क्यो तुझे इन पांडवों पर इस कदर अभिमान है।
तेरा भी पानी यह थोडी देर का मेहमान है।।

द्रौपदी — यह दहाड़, यह रुदन निष्फल न मेरा जायेगा।

दुर्योधन — दासियो की पंक्ति में तुझको अवश्य ले जायेगा।

द्रौपदी — मैं सत से हटना नहीं चाहती। यदि स्वामी की आज्ञा होगी तो कुत्ते र की सेवा करूंगी–
सहूंगी जितना दुख संकट, बढ़ेगी शक्ति इस मन की।
जलाने से तपाने से, चमक बढती है कुन्दन की।।
निछावर प्राण तन करूं, जो हो संकेत स्वामी का।
सहर्ष मैं डाल लूं गर्दन में फंदा, इस गुलामी का।।
नहीं मैं मौत से डरती हूं, गो मैं भाग की हेटी।
नहीं पर आन की हेटी, यह हिन्दुस्तान की बेटी।।

सब — धन्य है सती, तेरा पतिव्रत धन्य है।

द्रौपदी — हैं ! यह क्या ? दुष्टों का संताप और पांडव चुपचाप–
पांडवों के स्वाभिमान को ईश्वर यह क्या हुआ ?
वीरो की आन-बान को ईश्वर यह क्या हुआ ?
क्या भीम की गदा भी नहीं है जहान में ?
अर्जुन के बाण क्या नहीं चढते कमान में ?

दुर्योधन — पत्थर की मूर्तियो को अब क्यों देखती है ? उनकी वीरता और गम्भीरत पर क्यों मान करती है ?
अब राज ही न उनका, न उनकी जबान है।
तुम मेरी, इनका तेरह बरस वन स्थान है।।
ताले धर्म के मुंह पे हैं, सबके लगे हुए।
वो मुंह नहीं कि जिससे कोई बात कर सके।।

द्रौपदी — हैं ! यह क्या ? भीष्म जैसे मानी, गुरु द्रोणाचार्य जैसे ज्ञानी, मन्त्रियो के मुह क्यों बन्द हैं ? कोई मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं देता। पहले महाराज युधिष्ठिर ने मुझको हारा या खुद को ?

दुर्योधन – पहले राजा युधिष्ठिर ने धन और राज हारा, फिर भाइयों को संभाला। तत्पश्चात् खुद को दाव पर लगाया। जब अपने को हार गये तो तुझको दाव पर चढाया। यह तेरा सौभाग्य है कि राजा दुर्योधन ने तुझे दासता में अपनाया।

द्रौपदी – यदि पहले खुद को हारा तो फिर मुझको हारने का क्या अधिकार था ? क्या ऐसा करना शास्त्र के अनुसार था। पराधीन स्वाधीन नहीं है। दुनियां की वस्तु उसके आधीन नहीं है।

विकर्ण – *(गुस्से से)* बड़ी लज्जा की बात है, द्रौपदी इतनी देर से प्रश्न करती है और सब लोग चुप बैठे हैं–

भर रही है क्यों सभा अब शोक से संताप से।
क्यो निरुत्तर होके बोझल हो रही है पाप से ?
धर्म पीडा पा रहा है आपके चुपचाप से।
धर्म क्षय होता है क्षण-क्षण द्रौपदी-विलाप से।।

भीष्म – *(लम्बी सांस लेकर)* हा.....।

समय का फेर कर देता है गीदड, शेर केहरि को।
फेरता है समय ही दर-बदर राजेश्वरी नर को।।

विकर्ण – मैं हाथ जोड़कर निवेदन करता हूं कि द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर दिया जाय वरना इसे दासी कहकर न पुकारा जाय। *(रुककर)* हैं...फिर वही सन्नाटा ...हा.....जहां द्रोणाचार्य और कृपाचार्य जैसे वेदज्ञाता और भीष्म पितामह जैसे विश्व विख्यात हों, उस सभा में ऐसा अधर्म ! राजा और महाराजों के सामने यह कुकर्म। हा......विदित हुआ कि आप लोग दुर्योधन से डरते हैं और इसलिये धर्म को छोडकर अधर्म करते हैं–

सभा है मूर्तिवत् सारी फक्त इक कौरव के डर से।
हुए हैं चुप यो गोया बने हैं बुत यह पत्थर के।।
रखो याद यह भूमि है कायम धर्म होने से।
नहीं तो आग के शोले निकलेंगे कुकर्म करने से।।

मैं यह अन्याय नहीं सह सकता। असत्य का पक्ष नहीं ले सकता। सती द्रौपदी को दासी नहीं कहा जा सकता।

दुर्योधन – *(गुस्से से)* क्यों नहीं कहा जा सकता। छोटा मुंह और बडी बात। मेरे सामने बोलते तुझे लज्जा नहीं आती।

विकर्ण – *(गुस्से से)* लज्जा.........लज्जा । क्या मैंने जुआ खेलाया है या कपट और फरेब से किसी को जीता है ? भोले भाइयों को छलता हूं या पराई सम्पति को देखकर जलता हूं ?

दुर्योधन – अरे दासी को दासी नहीं कहता, क्या यह अज्ञानता नहीं है?

विकर्ण – वह स्वार्थी ज्ञान है। ज्येष्ठ पितावत् होता है। पुत्री पर पिता की नहीं पति की सत्ता होती है।

दुर्योधन – ओट में परदे के, क्या खेला है यह मैंने शिकार ?
गोट के मैदाने चौसर में है मारा कर पुकार ।।

विकर्ण – हुई क्या वीरता मारी जो तुमने गोट चौसर पर।
हुआ क्या छत्रीपन मैदाने चौसर ही पै बस निर्भर।।

बहादुर वीर होकर ये जीनाकारी व मक्कारी।
चलाते हो कपट के बाण बनते हो धनुषधारी।
इसी पर नाज करते हो, इसी पर फक्र करते हो।
अगर करते हो तो निश्चय, नहीं तुम धर्म करते हो।।

दुर्योधन – *(गुस्से से चिल्लाकर)* ओ पापात्मा। अपनी गंदी श्वास को बन्द कर। मेरे मुंह न लग।

विकर्ण – मैं इन धमकियों मे आने वाला नहीं। सत्य मार्ग से जाने वाला नहीं।
करूंगा पक्ष मैं हर्गिज न तुझसे दुरगामी का।
करूं मैं भय तेरा या करूं त्रैलोक्य स्वामी का ?

दुर्योधन – *(मारने को दौड़ते हुए)* बलिदान के बकरे, तू इसकी पक्ष लेता है ?

द्रोण – बस सावधान ! यदि लडके पर हाथ चलाया तो समझले कि तेरा भी काल आया ।

विकर्ण – मैं नहीं किंतु विश्वपति पक्ष लेता है–
न तू भी सुखसे सोयेगा, दुखाकर आत्मा इसका।
सती है द्रौपदी, रक्षक है बस परमात्मा इसका।। *(जाता है)*

दुर्योधन – गया, जाने दो। *(द्रौपदी से)* आओ, कृष्णे आओ। मेरी जंघा पर आसन ग्रहण करो।

द्रौपदी – क्या ये दीख पडने वाली मूर्तियां जीवित हैं ? क्या सर्वशास्त्र विशारद पितामह और धर्मप्राण द्रोण और बुद्धिनिष्ठ समझानी कृपाचार्य का विवेक नष्ट हो गया ? हा.....! पृथ्वी विदीर्ण हो जा। हे दुष्ट कौरव शांत हो। महात्मा युधिष्ठिर धर्म-बंधन मे हैं पर याद रखो अन्य भाई तुम्हें क्षमा न करेगे। मैं अशौचि और अस्पृश्य हूं। मुझे मत छूओ। हा ! कोई भी मुझ अबला की रक्षा करने नहीं आता।

भीम – *(गुस्से से)* हा......
द्रौपदी पै हाथ जो छोडे वह जिंदा छूट जाये।
टूट जायें ये भुजाये कान व आंखें फूट जाये।।
मैं शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूं कि तेरी बाईं रान से मेरी गदा आलिंगन करेगी और रणभूमि में तेरे लहू से इस सती के केश भिजोऊंगा। यदि मैं ऐसा न करूं तो पाण्डू-पुत्र न कहलाऊं। मरने पर उत्तम योनि न पाऊं।

दुर्योधन – देखा जायगा।

द्रौपदी – हा.......सभा अन्धी और बहरी है, कोई उत्तर नहीं देता। क्या महात्मा विदुर इस सभा में उपस्थित नहीं–
क्या द्रोणाचार्यजी का धनुष आज गल गया ?
अश्वत्थामा के तीरों को भय निगल गया !
क्या कृपाचार्य की नहीं तलवार पर'है धार ?
भीष्म पितामह की नहीं क्या जबान मे सार ?

दुर्योधन – *(हँसकर)* अब किसी की सामर्थ्य नहीं कि तेरी रक्षा कर सके। इसलिए बचने की आश छोडकर, क्रोध को दूरकर शान्त हो जा।

विदुर – *(दाखिल होकर)* सारी सभा अधर्म और चाटूकारी मे लय हो रही है–
भय से सब वीरों के लगा मुंह पै है ताला।
कर्म और धर्म को टुकडों के लिये दे डाला।।

भीष्म — *(गुस्से से)* ऐसा नहीं है तो निष्कपट परामर्श क्यों नहीं देते ? प्रजा के टुकडे खाकर दीन और दुखियों की पुकार क्यों नहीं सुनते ? निर्दोष अबला पर अत्याचार होते क्यों देखते हो--

सती की आह लगाती है आग पानी में।
ब्रह्माण्ड कांपे यह है शक्ति सती की वाणी मे।।
सुनाई देती नहीं गर तुम्हें दुखी की फरियाद।
प्रजा के टुकडों को खाकर करो हो क्यों बरबाद ?

द्रौपदी — नहीं, कोई नहीं सुनता। मेरे अश्रुओं पर भी कोई ध्यान नहीं देता--

कौरवों के दुष्ट अन्न का क्या यही प्रभाव है ?
क्या दुःशासन का सदा से ऐसा ही बर्ताव है !
राजमद सिखलाता है क्या दुष्टता निर्दयता ।
मन्त्रियों के मुख पै भी कुछ चिह्न करुणा के नहीं।
फिर दुखी के पक्ष मे कोई जबां हिलती नहीं।।

विदुर — सती का विलाप सुरीला राग नहीं है--

मेरा विश्वास है टुकड़ा अभी आकाश होता है।
नहीं संदेह है इसमें कि कुरु-कुल का नाश होता है।
इसी अन्याय से विष्णु मनुज अवतार धरते हैं।
पतिव्रता के आंसू ही मनुज उद्धार करते हैं।

दुर्योधन — *(हँसकर)* चाचाजी, तुम सदा यूं ही कहा करते हो।

विदुर — हां....गुल से बदबू को न आते हुए देखा हमने।
आम को मीठा ही रस देते परीखा हमने।

दुर्योधन — परन्तु हम भी तो सत्य ही कहते हैं और सत्य मार्ग पर ही चलते हैं।

विदुर — क्या इन्द्रप्रस्थ से धोखे से बुलवाना सत्य है ? जूए में फरेब देकर अत्याचार करना, सती स्त्रियों पर बलात्कार करना, क्या सत्य है ? यह न समझ कि तेरी बातों को कोई जानता नहीं। तेरी मक्कारी को बच्चा-बच्चा पहचानता है। यदि तू ईश्वर की तबाही से अब तक बचा हुआ है तो यह न समझ कि तेरा अत्याचार उसकी आंखो से छुपा हुआ है--

वक्त है अब भी तू अपनी मन की बागे मोड दे।
नास्तिकता भूल जा अन्याय करना छोड दे।।
जी दुखाना छोड दे अब भी किसी मजबूर का।
वर्ना दुनियां मे बुरा परिणाम है गरूर का।।

दुर्योधन — तो क्या यह *(द्रौपदी की तरफ इशारा करके)* मेरी दासी नहीं।

विदुर — हां ! बेशक नहीं है क्योंकि हारे हुए को हारने का कोई अधिकार नहीं है और यदि यह भी हो, तब भी सतीत्व रक्षा में रमणियां स्वाधीन हैं। इस विषय में पर-पुरुष तो एक ओर, स्वयं स्वामी के भी अधीन नहीं हैं। यदि संसार ने किंचितमात्र भी पुण्य का अस्तित्व है, सत्य में कुछ बल है तो निश्चय विपद-भंजन दुःख-निकंदन इस सती की रक्षा करेंगे और इसकी लज्जा को अवश्य अक्षुण्ण रखेंगे।

दुर्योधन — मुझे तुम्हारे उपदेश की जरूरत नहीं।

विदुर – हां...मैं भी समझता हूं, दुष्ट को उपदेश देना बंजर में बीज बोना है। जहां धर्म नहीं, शर्म नहीं, जिन कर्मचारियों का दिल साफ नहीं, जहां इन्साफ नहीं, वहां धर्म नहीं रह सकता–

घाव दुखियों का यह माना खून बहाता है कभी।
खून गरीबों का भी लेकिन रंग लाता है कभी।।

याद रख। सर्वदा अन्यायियों की चलती नहीं है। जुल्म के बूटे में हरियाली सदा रहती नहीं है।

द्रौपदी – हे वासुदेव ! दुख विभंजन, दुष्ट निकंदन, अब मेरी लज्जा तुम्हारे हाथ है। यहां सत्य की सुनवाई नहीं है। तुम्हारे बिना कोई साहसी नहीं है। धर्म, दुष्ट-अन्न के खाने से दब गया है। धर्मराज का स्वत्व भी आज छुप गया है।

दुर्योधन – द्रौपदी, अब मेरी आज्ञा के पालन बिना कोई चारा नहीं। मेरी दासी हुए बिना तेरा गुजारा नहीं–

आ, मेरे कदमों में झुक दासी का पद स्वीकार कर।
अपने हाथों आके कुरु-कुल ताज का सत्कार कर।।

द्रौपदी – यह तभी हो सकता है जब यह शरीर भस्म हो जायगा–

मुमकिन है कि इस तन को मैं अग्नि में जलाऊं।
छार करूं इसको या पृथ्वी में छुपालूं।
तलवार से या तीर से, खंजर से मिटाऊं।
चल सकती हो तदबीर, जो कुछ इस पै चलाऊं।।

दुर्योधन – *(क्रोध से)* दु:शासन, खड़ा-खड़ा क्या देख रहा है ? क्या इस आडम्बर से भय खा गया। इसकी साड़ी उतार दो, नंगा कर दो। देखे, इसका भगवान, किस तरह इसकी रक्षा करता है ! मैं देखूं–

किस तरह तू लाज अब अपनी बचाती है।
बुला तू कृष्ण को कैसे हिमायत में बुलाती है।
उतारो नंगी कर दो देखें क्या यह आग लाती है।
करिश्मा देखें माखन-चोर का क्या दिखाती है।

द्रौपदी – वही देवकी-नन्दन, कंस-निकंदन, नन्द का दुलारा, ब्रह्माण्ड का प्यारा, मेरी रक्षा करेगा–

क्यों प्रभु बन्धन में डाला तुमने इस निर्दोष को।
लूटता अन्यायी है सतपन के मेरे कोष को।
इस कदर बढने न दो भगवान तुम इसके जोश को।
तोड डालो इस कुकर्मी के गरूर व रोष को।
मेरे आर्तनाद की क्यों सुध प्रभु लेते नहीं।
ध्यान मेरे दुख पै दुखभंजन हो, क्यूं देते नहीं।

आओ। गोपाल आओ, इस अबला की रक्षा करो–

जिस तरह तारी अहल्या तुमने इस संसार से।
जिस तरह रक्षक हुए प्रहलाद के हर बार से।
शीघ्र आ रक्षा करो मेरी भी अत्याचार से।
लाजपत अब लाज रखो मेरी दुर्व्यवहार से।

जब शिशुपाल का सर काटते तुम्हारी अंगुली कटी थी और मैंने साड़ी फाड़कर पट्टी बांधी थी तो तुमने प्रतिज्ञा की थी कि इसका बदला आवश्यकता पर चुकाया जायगा। हे दीनों के रक्षक, दुखियों के प्रतिपालक इससे बढ़कर और क्या आवश्यकता हो सकती है, अब तुम्हारे बिन कोई दवा नहीं हो सकती है।

दुर्योधन – दुःशासन ! चीर खींचलो।

द्रौपदी – *(गाना)* आओ जी आओ मोरी लाज के बचाने वाले,
धैर्य के बन्धाने वाले।
प्रभु तुम हो गिरवरधारी, अहल्या तुमने तारी,
चुप क्यों हो मोरी वारी। यहां कोई नहीं आदमी है,
लाज बचाने वाले, आओ जी आओ ।। टेर ।।

दुर्योधन – क्या ग्वालों और चोरों को भी बुद्धिमान देखा ?

विदुर – क्यूं करता है मुंह जोरी ?

दुर्योधन – क्या दासी नहीं यह मोरी ?

द्रौपदी – प्रभु राखे लज्जा मोरी।
हे नंदनन्दन, कंस–निकंदन,
यहां हैं सब हंसी के उड़ाने वाले।
आओ जी आओ ।।टेर।।

(द्रौपदी चीर-हरन)

(गाना) हेर थकी चहुं ओर प्रभु उबारो देर भई । टेर।
पतिदेव ने हार के हार दिया नहीं धर्म रहा नहीं शर्म रही।
आन बचाओ दुःशासन से, नहीं तो भरी सभा में लाज गई।
भीष्म द्रोण हैं चुप पत राखो रुक्मणि की ज्यों राख लेई।।टेर।।
हेर थकी चहुं ओर...............।

(दुःशासन *का चीर खींचना, ट्यून का बजना, फिर पर्दे का आहिस्ता-आहिस्ता गिरना)*

⊙ ⊙ ⊙

सीन तीसरा

गाना

बचाओ डूबत धर्म की नैया।
दुर्योधन ने बना लिया है, दुशासन खिवैया।
दिव्य दृष्टि से पार करो प्रभु, तुम हो पार लगैया ।। बचाओ।।
तुझ दया बिन कंसनिकंदन हम पर है दुख भारी।
काम लोभ में सारे फंस गये, राजा रंक भिखारी ।।बचाओ।।

सात्यकी – आह ! राजसभा मे क्या हृदय-विदारक दृश्य देखा। हे ! परमेश्वर, तेरे राज्य में इतना अत्याचार और जटिल व्यवहार हो रहा है।
भाई, भाई तक को खा रहा है।
मनुष्य मनुष्य पर आफत ढा रहा है।

काल के चक्र से कैसा दुखमय भारत हुआ ?
धर्म-हानि, पाप पृथ्वी पे, सत गारत हुआ।
पाप का अब पूर्ण कौरव राज पर अधिकार है।
सत्य-रक्षा, धर्म की आशा ही, यहां बेकार है ।

चित्ररोन — हां, सत्य है–

प्रजा पे *दुख व* पाप के घन श्याम छा गये।
हमरो ही आसमां ने तेवर बदल लिये
पतझड ने डाल व पात पर कब्जा है कर लिये।

सात्यकी — यह दुर्योधन मदान्ध हो गया है, धन-धाम के मोह में चिंतामणि धर्म को खो बैठा है।

बदमस्त होके फूला है, धन और धाम पर।
भ्रम से वो मूरख मर रहा है, वंश व नाम पर।

चित्रसेन — उसके अत्याचार से आज धर्मराज युधिष्ठिर ने राज्य त्यागा है और इसी राह से धर्ममूर्ति पांडवो का वन जाने का इरादा है।

सात्यकी — यदि ऐसा है तो उनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वे दुष्ट दुर्योधन से इस अपमान का बदला ले। *(साइडिंग की तरफ देखकर)* देखो ! शायद वो ही इधर आ रहे हैं।

चित्रसेन — हां, वही हैं। अवश्य इनको समझाना चाहिये। *(युधिष्ठिर वगैरह का दाखिल होना और नगरवासियों का उनसे मुखातिब होकर उनसे बातें करना।)*

सात्यकी — *(युधिष्ठिर से कहते हैं)* हा ! महाराज रक्षा कीजिए। इन अत्याचारियों के हाथ में हमको न दीजिए।

जब पिता का पुत्र-भक्षण ही पै मन आने लगे।
क्या हो रक्षा जब, बाड ही खेत को खाने लगे।

चित्रसेन — हां, सत्य है। धर्मराज गौओ को भेडियों की रक्षा मे न दीजिए। हाथियों को कॅवल-बन की रखवाली न सौंपिए। आप जाते हैं तो हमको भी साथ ले चलिए।

युधिष्ठिर — पर यह विचारो कि हम हस्तिनापुर को उजाडने के लिए वन नहीं जाते,' पूर्वजों की राजधानी का उजाड़ देखना पसन्द नहीं करते। आप धैर्य धरें। धर्म पर आरूढ, अधर्म से दूर रहें। दुःख मिट जाएगा । संकट कट जाएगा।

भाग्य पर रखो भरोसा, धर्म के बल पर चलो।
दु:ख व संकट दूर होंगे, सत्य-पथ पर मर मिटो।।

सात्यकी — जहां न्याय के गले पर छुरी फेरी जाती हो, भाइयों के अधिकारों को छीना जाता हो, अबलाओं पर बलात्कार होते हों, वहां रहना वृथा है।

चित्रसेन — सत्य है–

हा ! अनीति से जो करता न्याय को पामाल है।
धर्म-कर्म को समझता जी का जो जंजाल है।।
भाइयों के ही गले पर जब छुरी के वार हैं।
राज्य में इसी प्रजा के स्वत्व सब बेकार हैं।।
ऐसी जलवायु मे रहना सर्वथा बेकार है।
यदि मिले वैकुण्ठ भी ऐसा तो शत धिक्कार है।।

युधिष्ठिर – नहीं, नहीं, सब्र करो। धैर्य धरो। राजा को ईश्वर का अंश समझो।

सात्यकी – नहीं, नहीं, स्वामी ! इस अन्यायी कौरव राज को हम राज्य नहीं कह सकते।

चित्रसेन – हां, जहां स्त्रियों पर अत्याचार हो, न्याय पर अन्याय का अधिकार हो, नीति पर स्वार्थ की छाप, अधर्मियों को सुख और सत्यवादियों को संताप हो, ऐसी जलवायु में विचरना भ्रष्ट आकाश में श्वांस लेना, अन्यायी राज्य का अन्न खाना महापाप है।

घर है अच्छा वही जिस जां पै न संताप रहे।
धिक है जलवायु, जहां दुख रहे, पाप रहे।

सात्यकी – हां ! अब यहां धर्मरूपी अधर्म का जाल होगा, न्याय विडंबना और अत्याचारों से प्रजा का बुरा हाल होगा।

युधिष्ठिर – यद्यपि हमारे साथ छल और कपट किया गया है। जुए में राज्य और पाट ले लिया गया है परन्तु अब बल और पराक्रम की लडाई नहीं, धर्म और प्रतिज्ञा-पालन का वाद-विवाद है।

स्वर्ग भी धिक्कार है गर अधर्म के बदले मिले।
धन-धाम पर थूकूं यदि दुष्कर्म के बदले मिले।।
नर्क बेहतर है गर वहां धर्म का कुछ अंश हो।
स्वर्ग भी बदतर है यदि कर्तव्यच्युत कुरुवंश हो।।

चित्रसेन – परन्तु आधे राज्य पर तो आपका स्वत्व है। यदि आपकी आज्ञा हो तो अभी इस अन्याय की जड काट दें। सती द्रौपदी के अपमान का बदला चुका दें। राक्षसी कौरवों को दुनियां से मिटा दें। दुख और संकट दूर कर शांति-स्थापन कर दें।

यदि इशारा हो तो हम अपमान का बदला चुकाएं।
जरा हुक्म यदि हो तो जान से वंश कौरव को मिटाएं।।
काटकर अन्याय की जड न्याय का सिक्का जमायें।
दु:ख और संकट दूर कर हम शांति का दरिया बहायें।।

विदुर – *(दाखिल होकर)* शांति और धैर्य को धारण करो। आत्मा में बल और नीति में छल करके कष्टों का निवारण करो। क्रोधाग्नि मनुष्य को बलहीन और कर्त्तव्यहीन कर देती है। यह नीति को नष्ट, अवनति में लीन कर देती है। आप लोग युधिष्ठिर-राज को धर्मराज बनने की आज्ञा दीजिए, क्योंकि–

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिए चारी।।

अर्जुन – सत्य है–

धर्म है तो सब है, धर्म गये सब जाय।
धर्म नसाये आपनुं, जग में होत हंसाय।।

चित्रसेन – तो अन्याय सहन करना और अत्याचारों पर ध्यान न देना भी असंभव है।

युधिष्ठिर – यदि आप सच्चे धार्मिक बनना चाहते हैं तो दृढतापूर्वक दुःख और सुख की चिंता न करो। माता कुंती की सेवा कर मेरा चित्त प्रसन्न करो। धर्म का पालन करो। चचा विदुरजी की नीति का प्रचार और सत्य का व्यौहार करो। *(युधिष्ठिर वगैरह चले जाते हैं।)*

सात्यकी — हा, गये, गये, धर्मराज गये, अंधेरा हो गया। *(विदुर से)* महाराज व्याकुलत बढ़ रही है। इसे शांत कीजिए और जीवन-यात्रा का मार्ग दिखाइए।

चित्रसेन — अब तो शठे शाठ्यम् समाचरेत् ही करना चाहिये।

विदुर — नहीं, पाशविक बल का प्रयोग करना मनुष्य-धर्म नहीं है। यद्यपि नीति का वचन है कि बुरों से भलाई करना भलों से बुराई करने के तुल्य है

सात्यकी — हां, महाराज ! मैंने भी सुना है—

शठों के साथ हो शठता, भलो के संग भलाई हो।
बनो तुम फूल पुष्पों में तो कांटों में कंटाई हो।

विदुर — हां, नीति का वचन है—

मित्र के संग मित्रताई ही सदा हो भाव में ।
शत्रु के आगे हो छल हर बात में हर दाव में।।
बस यही है राजनीति लोक हित के वास्ते ।
होती है कलिकाल में बस पॉलिसी ही की विजय।।

चित्रसेन — महाराज, आप नीतिज्ञ हैं। बतलाइए कि हम लोगों का कैसे उद्धार होगा?

विदुर — राजसत्ता का आधार प्रजा का बल है। राजसी शक्तियों का विस्तार प्रज की सहायता का फल है। यदि तिनके अग्नि की सहायता न करें तो अ नहीं जल सकती। यदि मूल शाखाओं को रस प्रदान न करें तो शाखा नहीं फल सकती।

प्रजा के बल पै ही बढता है राजाओं का सब छल-बल।
कटे गर मूल तो, शाखाओं का रहना है फिर मुश्किल।।

दुःशासन — *(साइडिंग से झांक कर दुर्योधन से कहता है)* देखा श्रीमान्, मैं जो कहत था कि ये राजद्रोही और शत्रु के पक्षपाती हैं। इसलिए राज-सभा में महारा का तिरस्कार और प्रजा में अशांति का प्रचार करते हैं।

दुर्योधन — आप चिन्ता न करें। मैं महाराज को जाकर लाता हूँ और इनकी बातें सुन कर उचित दण्ड दिलाता हूं। परन्तु ऐसा न हो कि मेरे आने तक चाचाजी खिसक जायें और मेरी आशायें निर्मूल हो जायें। *(दुर्योधन जाता है)*

सात्यकी — तो विदुरजी, इसी राज में रहते हुए दुर्योधन की आज्ञा का पालन न करेंगे तो क्या कर्मचारी हम पर अत्याचार न करेंगे ?

विदुर — यदि अत्याचार हो तो सहन-शक्ति पैदा करो। आत्मा में बल, मन में साहस करो। यदि हम शांतिपूर्वक मनोरथ की सिद्धि में लगेंगे और अन्याय के बदले विपदाओं का आलिंगन करेंगे तो निश्चय ही हम विजयी होंगे—

आत्मबल को अब बढावो, छोड दो पशुबल तमाम।
तीरो—तलवार व तोप का लो न सपने मे भी नाम।।
डर ना अत्याचार से हो और न हो दु.ख भय से।
कुछ सीख लो तुम सहन शक्ति भक्तवर प्रहलाद से।।

सात्यकी — तब तो बडा उपयोगी साधन है। देश-हित के लिए ही नहीं, मुक्तिदायी भी है।

चित्रसेन — हां, ईश्वर सत्यपरायण है—

सभा मे जिसने अगद के लिए रावण को झुकाया था।
वही द्रुपदसुता की लाज को जिसने बचाया था।।

वही ईश्वर सफलता देगा अपनी कामनाओं में ।
वही बस सहनशक्ति देगा हमको दुःख की राहों में।।

सात्यकी – तो मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आज से सहनशक्ति के पथ को अपनाऊंगा कर्त्तव्य को निभाऊंगा।

विदुर – जल्दी न करो, प्रतिज्ञा करने से पहले दृढता कर खूब सोच-विचार लो। यह पथ कुछ सरल नहीं, खड्ग की धार पर चलना है।

चित्रसेन – परवाह नहीं। तन-प्राण चाहे जावें, वतन लज्जित न होगा।

दुःशासन – *(साइडिंग में खुद से)* ओह ! मूर्खता के अंधेरे गड्ढे में पड़ा हुआ, मेरे क्रोध में जला हुआ, क्या अब भी अपनी जिद से न हटेगा? *(विदुर से, प्रकट बाहर आकर)* महाराज आप क्या कर रहे हैं ?

विदुर – कौरव राज के आघात की दवा। देश-उन्नति के लिए प्रार्थना कर रहे हैं–
बस हम देश उन्नति और धर्म का प्रचार करते हैं।
प्रतिज्ञा-बद्ध हो-हो धर्म का इकरार करते हैं।।
बताकर शुद्ध धर्माधर्म भारतवासियों को हम।
प्रतिज्ञारूढ रहने के लिए तैयार करते हैं।।

दुःशासन – अर्थात आप प्रजा को महाराज दुर्योधन के विरुद्ध उकसाते हो और अशान्ति फैलाते हो–
धर्म की आड में अन्याय का बीड़ा उठाते हो।
कर्मचारी हो कौरव वंश के, विपरीत जाते हो।।

विदुर – हां, जब तक मुख में जिह्वा, शरीर में जान, धर्म पर ईमान है, इस मस्तिष्क में देश की सेवा और उसकी आन का ध्यान है। प्रजा को सहनशक्ति सिखायेंगे, धर्म का मार्ग दिखायेंगे। मनुष्य-अधिकार की रक्षा की विधि सब को सिखाता हूं। दुःखों से मुक्त होने का सुगम रस्ता बताता हूं।

दुःशासन – अर्थात पाण्डवों का पक्ष लेकर दुर्योधन को हानि पहुंचाते हो।

विदुर – हानि-लाभ, जीवन-मरण, जस-अपजस विधि हाथ। कोई किसी की हानि नहीं कर सकता। कर्म ही मोक्ष और बंधन का मुख्य कारण है। दूसरों का स्वत्व छीनना, मनुष्यों को दास बनाना छोड़ दो। इस अभिमान के मिथ्याभाषी कांच को तोड़ दो।
धर्म के बदले मिले यदि स्वर्ग तो भी इच्छा न हो,
पर दारिद्रय में भी हरगिज पाप की इच्छा न हो।
वर्ना समझो अब तुम्हारे शुभ दिनो का फेर है,
पाप का घट भर चुका अब फूटने की देर है।

दुःशासन – *(साइडिंग से देखकर स्वतः)* महाराज आते हैं। अब उनको भड़काना चाहिये और महाराज को इनका चरित्र दिखाना चाहिये। *(प्रगट)* यदि महाराज ! ऐसा करोगे तो राज-दृष्टि में गिर जाओगे, दण्ड के भागी बनोगे।

विदुर – *(गुस्से से)* दंड से किसे डराता है ? दुःख से उसको भय होता है जिसमें कुछ गंद होता है मगर जो शुद्ध कुंदन होता है, तपाने से चमकता है।

दुःशासन – तो क्या राजा धृतराष्ट्र अन्यायी हैं, जो आप उनके शासन की उपमा अगन से देते हैं ?

विदुर — हां ! उन्हें सत्य-असत्य का निर्णय नहीं रहा। पुत्र के मोह में उनके हृदय के चक्षु भी जाते रहे।

दुर्योधन — *(साइडिंग में महाराज धृतराष्ट्र से कहता है)* देखा महाराज ! चाचाजी प्रजा के सामने क्या कह रहे हैं ?

धृतराष्ट्र — *(गुस्से से झल्लाकर)* क्यों भाई, तुमको हजार बार समझाया मगर तुम्हारी समझ में न आया। तुम विद्रोही बनते जा रहे हो और प्रजा को उल्टे मार्ग पर चला रहे हो।

विदुर — नहीं, मैं बुराई से बरी रहता हूं। सच कहता हूं, मुंह पे कहता हूं, खरी कहता हूं, सच कहता हूं। यद्यपि आपके बाल सफेद हो गये किंतु अनुभव में नहीं बल्कि धूप में हुए हैं। मैंने पहले ही कहा था कि दुर्योधन कौरव वंश की जड काटेगा। परन्तु आपने ध्यान नहीं दिया। आखिर बदनामी का ठीकरा अपने ही सर फोडा। पाण्डव जैसे सत्यवादी और देवता पुरुषों को छल और कपट से जूए में जीता। द्रुपदसुता पर भरी सभा में असहनीय और अकथनीय अत्याचार किया और यह देखकर भी कि सती द्रौपदी दुःशासन जैसे अन्यायी की पूर्ण चेष्टा पर भी नंगी न हुई, मगर तुम्हारी आंखें न खुली। दुर्योधन केवल गली का शेर है। मैं अब भी कहता हूं कि यदि अपने वंश और बेटों को सुरक्षित रखना और राज्यसभा को विभूषित रखना चाहते हो तो पांडवो को बुलवाइये, बेटों के अपराध क्षमा कराइये-
वरना देखो अब तुम्हारे शुभ दिनों का फेर है,
पाप का घट भर चुका अब फूटने की देर है।

धृतराष्ट्र — *(गुस्से से)* विदुर ! तुम बहुत असभ्य हो गये। तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई पाडवों के पक्षपात ने तुम्हे अंधा कर दिया है। जब देखो मुहं पर ही मुझको कोसते हो। यह नहीं समझते कि दुर्योधन आत्मज है, भतीजा फिर भी दूर है।

विदुर — संसार का सबके लिए जब यकसा विस्तार है,
पांडवों का फिर न दुर्योधन सा क्यों अधिकार है ?
सर्वस्व लेना पांडवों का क्या न अत्याचार है ?
अन्याय को जो न्याय कहता है उसे धिक्कार है।

धृतराष्ट्र — *(झल्लाकर)* बस, अब मैं सहन नहीं कर सकता। यदि आप हमारी उन्नति नहीं देख सकते तो यहां रहने की कोई आवश्यकता नहीं। जहां चाहो चले जाओ। मुझे मुहं न दिखाओ। *(दुःशासन की तरफ इशारा करके)* दुशासन ! इनको मेरे सामने से हटा दो। *(दुःशासन विदुर की तरफ बढ़ता है)*

नागरिक1 — *(गुस्से में)* बस, खबरदार। आगे न बढ़ना। महात्मा विदुर पर हाथ उठाने का साहस मत करना–
चाहे दुख भोगना हमको पडे या देश तजना हो,
विपत घनघोर हो जाये चाहे सुख अपना सपना हो।
मगर इस आत्मा को दुख न होने देगे जीते जी,
करेगी मुक्त बंधन से जन्मभूमि को यह शक्ति।

विदुर — शांत, शांत–
दुःख से घबरावो न कुछ चिंता करो धन-धाम की,
मान तज ओ प्राण तज चिंता तजो निज नाम की।

जब तक न झेलो दुःख संकट यह रास्ता हो नहीं सकता,
सडे जब तक न खुद दाना वह पैदा हो नहीं सकता।
रहो जप्त शांति और नीति का बस यह मंत्र हो अजीर।
जिसे मरना नहीं आता वह जिंदा रह नहीं सकता।।

नागरिक2 – पग क्लेश व दु.ख से यदि पीछे धरे धिक्कार है।
देश के हित प्राण व तन देना हमें स्वीकार है।।

विदुर – परन्तु आक्रमणात्मक रूप से नहीं। अहिंसात्मक सहनशीलता द्वारा आत्मा की शुद्धि, अपने विचारो की वृद्धि करो।

अहिंसा परम धर्म को करो सिद्धांत तुम अपना।
निछावर कर दो देशहित के लिए तुम तन और मन अपना।।
जो हो कर्त्तव्य पथ पर प्राण न्यौछावर तो भागी हो।
वनों का वास, कारागार देशहित में है स्वर्ग अपना।।

दुर्योधन – दुःशासन, अपना काम करो।

विदुर – आवश्यकता नहीं, मैं स्वयं जाने को तैयार हूं–

न इच्छा मुझको मंत्री पद की न बंधन का कुछ भय है।
अमर रहता है बस वही ही कि जिसको मृत्यु पर जय है।।
है मद यदि देश सेवा का फिर बनवास का क्या डर ।
ये कांटे फूल हैं मुझको व वन उद्यान से बेहतर ।।

गाना

इस द्वापर युग में धिक् ऐसे पापी इन्सान को।
जिसने धन और धाम को छोडा, पर न छत्र से मुख मोडा।
दुनियां से सब नाता तोड़ा, माया-मोह को पर न छोड़ा।।
सर पर संकट झेला, रखा है अभिमान को, अभिमान को।
इस द्वापर युग में धिक्, ऐसे पापी इन्सान को।।

⊙ ⊙ ⊙

सीन चौथा

(विदुर का घर। वसुमति का गाते हुए दिखाई देना)

हे घनश्याम ! हे बलराम ! आओ, आओ, हां आओ।
मंगलधाम, पूरन काम,
विकसित पदमासन अभिराम,
प्रभु अनुपम वदन दिखाओ ।
हे घनश्याम..................आओ।।
गीता ज्ञान, आत्म ज्ञान,
सत्य वचन मय कर्म प्रधान,
जगदाधार! अत्याचार मिटाओ,
अमृत बरसाओ।
हे घनश्याम..............आओ ।।

सूरसेन – *(दाखिल होकर)* माता, माता! भारत की उन्नति का समय आ गया।

वसुमति – क्यों, तूने कैसे जाना ?

सूरसेन – देश सेवा के विचार राजविद्रोह कहलाने लगे। देश सेवक को अपराधी बतलाने लगे। और इसी अपराध में देश निकाले तक का दण्ड दिया जाने लगा।

वसुमति – नहीं, नहीं, सेवा-धर्म अपराध नहीं हो सकता।

सूरसेन – प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं। मैंने सुना है, इसी अपराध में पिताजी को वनवास का दण्ड दिया गया है।

वसुमति – *(आश्चर्य से)* हैं ! देश सेवा में, और वनवास !! ओ हो !
अमन-सुख शान्ति की मर्यादा सारी उठ गयी !
यदि ऐसे उच्च कर्म अपराध की गिनती में हैं, तो समझ लो भारत की अवश्य उन्नति है। अब तुम भी कर्त्तव्य पालन करो–
हो यदि औलाद वीरों की, तो निकलो कर्मयोगी बन।
बजाओ देश में डंका, निछावर कर दो तन मन धन।।

सूरसेन – माता, आप न घबरायें। मैं केवल आप की आज्ञा लेने और केवल आप को यह अद्भुत अपराध सुनाने ही आया था–
करूंगा अब पिताजी के पथ पर काम भारत का।
हरूंगा पीर भाइयों की, रखूंगा नाम भारत का।।

वसुमति – हां, जाओ, अपने भाइयों को दु:ख से छुड़ाओ–
दिया है जन्म मैंने तुमको कुल का नाम करने को।
पिलाया दूध मैंने तुम्हें भारत पै मरने को।।
दिखाकर वीरता अपनी, बनो श्रृंगार भारत का।
करो वह संगठन, हो जाए पुन: उत्थान भारत का।।

सूरसेन – जो आज्ञा, ऐसा ही होगा।

वसुमति – धन्य समझूंगी जो तू कर्त्तव्य पर बलिहार हो।
जाति-सेवा में हो तत्पर देश का श्रृंगार हो।।
अन्यायियों के कष्ट सहकर देश की पीडा हरो।
निष्कपट निश्छल सदा तुम जाति की सेवा करो।।

सूरसेन – मैं भी अपने को तब ही धन्य समझूंगा जब मुझ को कृष्ण–भूमि के दर्शन हो जायेंगे–
देश सेवा के लिए यह पुत्र अब तैयार है।
मुडूं यदि कर्त्तव्य पथ से तो धिक्कार है।।

वसुमति – तथास्तु।

दु:शासन – *(दाखिल होकर सूरसेन से)* तुम को मालूम है कि तुम्हारे पिता को वनवास दिया गया है।

सूरसेन – हां, मालूम है।

दु:शासन – तो बस, अब तुम भी घर-बार छोड दो और जंगल का रास्ता लो–
तज सब वस्त्र आभूषण लो रास्ता वन जाने का।
हुआ है हुक्म अब मुझ को यहा ताला लगाने का।।

सूरसेन – क्या हुआ अपराध हम पर कर रहा जो वार है।
ऐसे अत्याचार पर फटकार है, धिक्कार है।।

वसुमति – क्या अभी पाप का घट नहीं भरा ? क्या अब धर्म, दया, सेवा और प्रेम का भाव नहीं रहा ? एक सत्यवादी निःस्वार्थी और निष्कपट मन्त्री को वनवास दिया। स्वार्थान्ध हो कर अब सत्य का मार्ग. त्याग दिया !

सूरसेन – परन्तु तुम्हारा हम से क्या सरोकार है ?
हमारे वस्त्र आभूषण और घर पर तुम्हारा क्या अधिकार है ?
यदि पिता दण्डी हुआ तो पुत्र भी तैयार है।
देश हित में प्राण तक देना मुझे स्वीकार है।।

दुःशासन – तो बस हुक्म बजा लाओ और दुर्योधन के हुजूर में हाजिर होकर अपने किये पर पछताओ। तुमको क्षमा कर देगा, घर-बार वापस दे देगा।

सूरसेन – क्या मैं एक नीच का हुक्म मानूं !

दुःशासन – *(हाथ को पकड़कर झटका देकर सूरसेन से)* क्या तू राज-सत्ता से नहीं डरता ? राज-आज्ञा का पालन नहीं करता ?

वसुमति – आह !
यह अधर्म अन्याय मुझ पर आततायी किसलिए।
खा रहा है लूट कर दौलत पराई किसलिए।।
तुच्छ जीवन पर यह अभिमान ढिठाई किसलिए।
चाटुकारी निर्दयता तुझ में आई किसलिए।।
तुझ को मद आया है जिस अन्याय और अभिमान पर।
उस किले की नींव है इस रेत की ऊंचाई पर।।

सूरसेन – *(दुःशासन की तरफ देखकर गुस्से से)*
जोश में अनित्य के आकर तू न दुखियों को सता।
किसका अभिमान रहेगा और किसका रहता है सदा।
काल के चक्र में यह अभिमान सब मिट जाएगा।
यह गुब्बारा है हवा निकलेगी तो फट जाएगा।।

दुःशासन – राज-आज्ञाओं का पालन करना, संसार में शांति स्थापन करना, हमारा धर्म है। महाराज दुर्योधन जैसे विचारशील और न्यायी राजा पर आक्षेप करना तथा उनकी आज्ञाओं को अन्याय बताना भ्रम है।

सूरसेन – जहां चाटुकारों और चापलूसों का अधिकार होता है, वहां अन्याय और अत्याचार का अवश्य प्रचार होता है। आह, तेरे ही क्रूर हाथों ने उस पतिव्रता और पवित्र ज्योति का भरी सभा मे अपमान किया है। और एक निरपराध नीतिज्ञ को उसके धर्म से डिगाने का सामां हुवा है। ओ दुष्ट ! मदान्ध न हो, सम्भल कर चल। यह मद तेरे जीवन को बरबाद कर देगा। *(वसुमति से)* माता, यह चाटुकार है, इसकी खुशामद व्यर्थ है। इसकी उन्नति चार दिनो की चांदनी और कली की जवानी है। *(दुःशासन से)* हम राजा युधिष्ठिर की आज्ञा मानेंगे। दुर्योधन की आज्ञा हमें मनुष्यत्व से हीन करती है। हम को उसे आज्ञा न कहना और उसके आगे न झुकना चाहिए।

दुःशासन – *(अपनी वर्दी दिखाकर)* देख मैं यहां तुझ से मिलने नहीं आया। किन्तु आज्ञानुसार आया हूँ। यदि तू इसको न मानेगा तो मुझ को बाहुबल से काम लेना पड़ेगा।

सूरसेन – तू किसको डराता है ? तुझे देख कर कौन घबराता है ? क्या गधा शेर की खाल में नहीं रह सकता ?

है वृथा मूर्ख तुझे आततइयों का बल प्रमाण।
तुझ से क्या कम था अरे बाली बल का निधान।
क्या रहा उसका जो अब तेरा 'अमल रह जायेगा।
काल के आगे तेरा सब बाहुबल रह जायेगा।।

दुःशासन – यदि मेरा नहीं तो *(तलवार दिखाकर)* इसका तो मान करना ही पड़ेगा।

सूरसेन – अब प्रतिष्ठा का नहीं सामान है यह अपमान का।
हुक्म मानेंगे मनुष्य होकर न हम शैतान का।।

दुःशासन – ओ मूर्ख! क्या तू जानता है कि इसका परिणाम क्या होगा ?

सूरसेन – मुझे जानने की आवश्यकता नहीं।

दुःशासन – इसका दण्ड वनवास या कारागार है। अब तू सख्ती का सजावार है।

सूरसेन – कष्ट से मुझे क्यों डराता है। क्लेश के नाम से मुझे क्यों धमकाता है।
किसलिए देता है धमकी मुझको कारागार की।
जन्म से आदत नहीं है मुझको 'जी सरकार' की।।

दुःशासन – क्यो बातें बनाता है, मुझ को तरकीबें सिखाता है।

सूरसेन – मैं बातें नहीं बनाता । सत्य कहता हूं–
जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और धूर समान है।।
है वह पशु जिसको न अपने देश का सत् ज्ञान है।
जन्म ही वह धन्य है जो देश पर बलिदान है।।

दुःशासन – *(हँसकर)* तू बच्चा क्या कर सकता है, भारत के लिए क्या कर सकता है ?

सूरसेन – हाथी को अकुंश ही जेर कर सकता है। पाशविक बल को आत्मिक बल से ही दबाया जा सकता है । अन्याय का उत्तर शीलता से ही दिया जाता है।

भाव रग-रग में है मरने का वतन के वास्ते।
सींचने को है लहू मेरा चमन के वास्ते।।
एक मेरा आयेगा यदि काल भारतवर्ष मे।
होंगे पैदा मुझसे लाखों लाल भारतवर्ष में।।

दुःशासन – *(वसुमति से)* देवी, बच्चे को समझावो। इसे मोत पुकारती है। जवानी इसे उभारती है।

वसुमति – युवावस्था धर्म और सत्य पालन के लिए है। जिस नवयुवक में जाति सेवा और धर्म का विचार न हो, जिसमे वीरता, दृढता और शीलता का संचार न हो, उसका जीवन निर्लज्जता है, उसकी वीरता कायरता है–

सर का दिया है ताज तो शुभ कर्म के लिए।
देती हूं आत्मज को भी अब धर्म के लिए।।
यहि मांगते हो माल तुम भारत के वास्ते।
देती हूं जाओ लाल यह भारत के वास्ते।।

दुःशासन – *(खुद से)* इस बच्चे को मौत पुकारती है।
(जाहिर) क्या तू आज्ञा का पालन न करेगा ?

सूरसेन – अन्याय के आगे यह सर न झुकेगा।

दुःशासन – बस, जिह्वा को रोको।
सूरसेन – सत्य कहने से न टोको।
दुःशासन – इस ढिठाई का कारण ?
सूरसेन – सत्य का उच्चारण।
दुःशासन – क्यों अपनी मौत बुलाता है ? यदि सदा के लिए चुप होने की इच्छा नहीं तो थोड़ी देर के लिए चुप हो जा।
सूरसेन – *क्यों डराता है मुझे लोहे की तू जंजीर से।*
छेद तो सकता नहीं मुझको तू तेरे तीर से।।
भय नहीं प्रह्लादवत् इस मृत्यु का औ पीर से।
चुप न होगी यह जबां अब सत्य की तकरीर से।।
प्राण हो बलिदान धर्म और नीति की तस्वीर से।
शुभ घडी है तब तो आज, मेरी फूटी तकदीर से।।
दुःशासन – *(गुस्से से)* अब भी कहता हूं कि प्राण न गंवा–
जिला देना मिटा देना है दुर्योधन की आज्ञा में ।
हमेशा तक सुला देने की शक्ति है अवज्ञा में।।
न एक छन ही लगेगा तुझको धरती में सुलाने मे।
तेरी मृत्यु उपस्थित होगी चुटकी के बजाने में।।
सूरसेन – ओ मूर्ख! *क्यों* रार खपाता है ? तेरे दुर्योधन का अधिकार पार्थिव पदार्थों पर ही हो सकता है, आत्मा पर नहीं।
राज्य जला सकेगा फ़क्त इस शरीर को।
पहुंचा सकेगा जिस्म से आगे न तीर को।।
ललकार से हटा तो सकेगा न शेर को।
रण में डरा सकेगा न हर्गिज दिलेर को।।
दुःशासन – *(गुस्से से झल्ला कर)* बस, अब सहन नहीं कर सकता। *(सीटी बजाता है, सिपाही दाखिल होते हैं)* इसे गिरफ्तार करलो। *(सिपाही गिरफ्तार कर लेते हैं, पर्दा गिर जाता है।)*

⊙ ⊙ ⊙

सीन पाँचवाँ

(कौरवराज धृतराष्ट्र का अपने महल में पश्चाताप करते दिखाई देना)

मारडाला.....मारडाला......। भाई विदुर को क्या निकाला, मेरी कमर को तोड डाला। आह ! दुर्योधन तूने मुझे कहीं का न रखा.......।
वाटिका आशाओं की बरबाद हो गई।
आह ! दुनियां मेरी खातिर अंधेरी हो गई।।
आह ! मैं न जानता था कि भाई विदुर के जाने से मेरे सुख और शान्ति में खलल आयेगा। फूली फली *वाटिका पर पतझड़ का दखल हो जायेगा।*
ओह, जीवन ! पापमय जीवन !! दुखमय जीवन !!!
तू सामने से हट जा। ओ वायु मण्डल ! मेरे हृदय को तुम शीतल नहीं कर सकते।

हे! दयालु दीनबन्धु अब न दु खों को बढ़ा।
हे! दयामय अब मुझे अपनी शरण में ले उठा।।

दुर्योधन — *(दाखिल होकर)* हैं ! हैं ! पिताजी आप इस तरह व्याकुल क्यों होते हैं। दुनियां से निराश क्यों होते हैं।
हुई हुक्म अदुली या कै गुस्ताखी हुई पैदा।
तुम्हें किस वास्ते दुनियां से बेजारी हुई पैदा।।

धृतराष्ट्र — न कोई भय है न कोई डर है परन्तु भाई का वियोग सता रहा है। उनके बिना जीवन नहीं रह सकता। उनके बिना परामर्श, राज्य नहीं चल सकता। जहां पर वैद्य न होवे वहां रहना नहीं अच्छा। साधु की सेवा बिना दुनियां में जीना अनिष्ट है। यदि न हो विद्वानों की संगत तो मरना श्रेष्ठ है।

दुर्योधन — *(खुद से)* बुढ़ापे में बुद्धि विपरीत हो जाती है। शत्रु में मित्र का भान और मित्र मे शत्रु का अनुमान होने लगता है। क्या चाचा विदुर के अतिरिक्त कोई विद्वान नहीं रहा। क्या उनके बिना जीवन का सामां नहीं रहा।

धृतराष्ट्र — हां सच्चा उपदेशक, अविद्या का नाशक और नीति का प्रचारक नहीं रहा।

दुर्योधन — यदि आपका ऐसा विचार है तो समझ लीजिये हमारे भविष्य में अंधकार है। *(क्रोध में जाता है और संजय प्रवेश करता है)*

संजय — महाराज की जय हो। आज श्रीमान् के मुखकंवल पर उदासी क्यों है ?

धृतराष्ट्र — भाई का वियोग सता रहा है। विदुरजी का क्रोधित होकर जाना तपा रहा है। हा ! ईश्वर ने मुझे यूं ही अंधा किया है और दुर्योधन के मोह ने और भी अन्धा कर दिया और इस दुष्ट के कारण मुझे यह वियोग सहना पडा।

संजय — महाराज ! धैर्य धरें इस तरह चित्त में अशान्ति न करें।
शान्त हो सुख शान्ति की फिर बहार आने को है।
अब वाटिका मे बसन्त आया खिजां जाने को है।।

धृतराष्ट्र — तो क्या तुम विदुर को मना सकते हो। भाई को समझा बुझा कर फिर ला सकते हो।

संजय — दास, सेवा के लिये तैयार है। परन्तु उनका पता चलना दुश्वार है।

धृतराष्ट्र — मुझे विश्वास है कि वो निश्चय युधिष्ठिर के पास होगे।

संजय — तो यह दास अभी जाता है ! और उनको शीघ्र ही लेकर सेवा में आता है। *(संजय का एक तरफ जाना और धृतराष्ट्र का गुनगुनाते हुए दूसरी तरफ चला जाना।)*
तू ही है प्रभु जगदाधार, सरजनहार ओ करतार।
तू ही जग का कर्त्ता धर्त्ता, तू ही है सबका दुःख हरता।
प्रभु मेरा वियोग से करो उद्धार,पालनहार। तू ही ....

⊙ ⊙ ⊙

सीन छठा

(युधिष्ठिर, द्रौपदी, विदुर आदि का ईश्वर की प्रार्थना में निमग्न दिखाई देना)

गाना

जय जय भारत पावन देश,
जय जय प्यारा, जग से न्यारा शोभित सारा देश हमारा।

नकुल – महाराज ! मैंने सुना है कि संजय ने काम्यकवन को प्रस्थान किया है।
युधिष्ठिर – क्यों, चचा धृतराष्ट्र ने फिर बुलाया ? क्या जुवे का निमंत्रण फिर आया ? नही ! नहीं !! अब मेरे पास क्या है जो फिर बुलायेंगे।
भीम – यदि आप फिर जायेंगे तो राजपाट, धन-धाम तो नहीं है किन्तु गांडीव धनुष निश्चय गवायेंगे।
युधिष्ठिर – नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैं इस प्राण प्रिय गांडीव को नहीं खो सकता। भविष्य का आधार, मेरे जीवन का भार इसी पर है।
(संजय दाखिल होता है)
संजय – महाराज को प्रणाम हो।
विदुरजी – आयुष्मान। कहो संजय कैसे आना हुआ।
संजय – आप को बुलाने, हस्तिनापुर ले जाने के लिये।
विदुरजी – क्या धर्मराज की दृढता आजमाने के लिये। जुवा खिलाने के लिये।
संजय – नहीं-नहीं । महाराज की आज्ञानुसार धर्मराज को नहीं केवल आपके लिये ही आया हूं और महाराज का संदेश लाया हूं।

तुम्हारे वियोग में बिगडी हालत आज राजन की।
न वो सूरत रही उनकी न वो हालत रही मन की।।

युधिष्ठिर – क्या कहा ? चचा धृतराष्ट्र सर धुनते हैं और अपने किये पर पश्चाताप करते हैं।
संजय – हां, भाई की याद में दिन रैन संताप करते हैं।
विदुर – क्या दुर्योधन से मुंह मोड़ लिया। उसका मोह तोड़ दिया।
संजय – यदि मोह नहीं तो सत्ता को अवश्य छोड दिया।
युधिष्ठिर – तो क्या अब चाचाजी का यहां से प्रस्थान होगा ?
संजय – हां, इन्हीं के द्वारा भारत का उत्थान होगा। दुखियों का कल्याण होगा।
भीम – नहीं, यह अब वहां नहीं जायेंगे।
युधिष्ठिर – नहीं, चाचाजी अपने भाई को न सतायेंगे।
संजय – हां, मुझे भी आशा है कि महाराज का जीवन ये ही बचायेंगे।
भीम – नहीं, ऐसा न करना चाहिये।
युधिष्ठिर – नहीं, नहीं। नीति, विरोध करना और आपस में लड़ना नहीं बतलाती। चचाजी अवश्य अपने भाई का दुःख मिटायेंगे। *(भीम से)* तू तो नादां है, दीवाना है, सोदाई है, लाख विपरीत हों आखिर तो भाई है।
संजय – ईश्वर करे आपकी मंगल कामना सफल हो। महात्माजी के पदार्पण से राज्य और प्रजा सुखी हो।
विदुरजी – यद्यपि मेरी इच्छा थी कि मैं हस्तिनापुर न जाऊं तथापि तुम्हारे अनुरोध से चलता हूं। अच्छा अब विदा होता हूं।
(युधिष्ठिर आदि खड़े होकर प्रणाम करते हैं। विदुरजी चले जाते हैं और युधिष्ठिर आदि दूसरी ओर जाते हैं)

⊛ ⊛ ⊛

सीन सातवाँ

(जेलखाना। कैदियों का गाते हुए नजर आना)
धन्य शान्ति निकेतन कृष्ण-भोम धन-धन,
कारागार सुखी। तू भगवतवर भक्ति

और तू कृष्ण-शक्ति वरदाता है।

कैदी एक — मुसीबतो का घर आपत्तियों का भण्डार दुर्योधन का कारागार है। हम चोरी-डाका और राहजनी में कैद किये जाते हैं परन्तु यह नहीं विचारा जाता कि अनाज महंगा क्यों बेचा जाता है, अन्य वस्तुएं ठीक दामों पर क्यों नहीं मिलती। हमको व्यर्थ क्यों सताया जाता है। दु.खी और दरिद्रों को न्याय की दृष्टि से क्यों नहीं देखा जाता। हमारे पेट भरने का प्रबन्ध क्यों नहीं किया जाता।

कैदी दो — हां, सत्य है। यदि हमारी आजीविका और शिक्षा का प्रबन्ध ठीक-ठीक कर दिया जावे तो कारागार में हमारा आना असंभव है।

कैदी एक — भाई ! बाहर का प्रबन्ध तो एक ओर रहा यहां आकर भी तो कोई सुधर नहीं सकता, यहां भी कोई सुप्रबन्ध नहीं है।

कैदी दो — हां ठीक है सुधर कैसे सकता है, जहां व्यवहार यह हो कि मनुष्य को पशु के तुल समझा जावे। सबसे सस्ते और खराब अनाज की रोटियां मिलें और वो भी आधा पेट और उपदेश का या शिक्षा का कोई चिह्न नहीं और काम सख्त से सख्त लिया जाता है। मानो यह शिक्षा दी जाती है कि कर्मचारियों के आधीन रहे और उनके अन्याय और अत्याचार को सहन करें।

सूरसेन — नहीं-नहीं, यह बात नहीं है। चोरी और डाके का साहस केवल भूख की पीडा से नहीं होता किन्तु कर्मचारियो के कर्त्तव्यहीन होने से होता है।

कैदी एक — हां सत्य है, मुझको दण्ड इसीलिए दिया गया है कि मैंने अबकी मर्तबा कर्मचारी को चोरी का भाग न दिया था अन्यथा पहले किसी चोरी में दण्डित नहीं हुआ।

सूरसेन — इसका कारण केवल यह है कि नियुक्ति का आधार योग्यता नहीं केवल चाटुकारी है और इसीलिए विचारहीन पुरुष यदि उच्च पद पर हो जाते हैं तो शासन को कलंकित कर देते हैं।

योग्यता की जा पै है चाटूकारी की बहार।
जिस तरफ देखो उधर है जी हजूरी की पुकार।।
नेक नियत सभ्य तो हैं आज फाकों के शिकार ।
पोलिसी से हो रहा है आज हर इक मालदार।।

जेलर — *(प्रवेश कर)* सूरसेन ! मैं कहता हूं सम्भल जाओ। संसार मे रहकर वृथा नरक के दु.ख न उठाओ।

सूरसेन — आपको इससे क्या सरोकार है। मेरे विचारों पर आपका क्या अधिकार है। किया परतंत्रता में तूने गर मेरा शरीर, आत्मा बंदी न कैदी विचारों में शरीर।

जेलर — यदि आपका ऐसा विचार होगा तो कष्ट अपार होगा।

सूरसेन — परन्तु देश-घातक होकर स्वर्ग भी मुझे अस्वीकार होगा।

बला से यदि मेरे माता पिता दुख भोग मर जायें।
बला से अन्य भ्राता यदि इसी रस्ते में कट जायें।
नहीं परवाह मेरा हर सुख यदि बरबाद हो जाये।
मगर यह जग सब दासता से आजाद हो जाये।

जेलर – सूरसेन ! तुम्हारा विचार सदाचार है परन्तु मनुष्य पेट से लाचार है। यही, अपवित्र और नीच कार्य करने को लाचार करता है। परन्तु अब तुम्हारे उपदेशों का जीवों पर अधिकार हो जाता है।

सूरसेन – इसमें तुम्हारा कसूर नहीं, प्रणाली का कसूर है। कर्मचारीगण जब अनीति और अन्याय से मजबूर हैं तो अपवित्र जलवायु में तुम्हारा बचना भी तुम्हारी शक्ति से दूर है।

(दुर्योधन और दुःशासन का दाखिल होना। सबका उनकी तरफ मुतवज-आकृष्ट-होना।)

दुर्योधन – *(स्वतः)* मेरी पहुंच की रस्सी दराज है। मुझे अपनी ताकत पर सच्चा नाज है। मैं चाहूं उसको रास्ते से मोड़ सकता हूं। देश भक्ति के फूले गुब्बारे को तोड़ सकता हूं।

नेताओं के मुंह बन्द हैं, इस धार के आगे।
आता नहीं कोई मेरी तलवार के आगे।

सूरसेन – जाता है सदा शेर तलवार धार आगे।
होता है खड़ा मर्द है तलवार के आगे।

दुर्योधन – क्यो सूरसेन। क्या राज मद नहीं मिटा ? क्या देश सेवा का सौदा दिमाग से न हटा ?

मुसीबत झेल कर भी क्या अभी तक शान बाकी है।
स्वजाति पर निसार होने का क्या अरमान बाकी है।

सूरसेन – हां वही है हौसला मेरा वही अरमान बाकी है।
वही है राजमद मेरा वही अभिमान बाकी है।
वही भारत पै मिटने का सब सामां बाकी है।
न सौदा जायेगा दिल से कि जब जान बाकी है।

दुर्योधन – यह आग ठंडी हो जायेगी, गर्मी उतर जायेगी।

सूरसेन – नहीं, सच्चाई जरूर अपना करिश्मा दिखायेगी। मुसीबत इसको न दबायेगी।

दुर्योधन – *(हँसकर)* मैं तुम्हारे इस ढकोसले को नहीं मानता।

सूरसेन – हां, कंस भी अपनी मौत को न जानता था। श्री कृष्णचन्द्र को केवल बालक ही मानता था।

दुर्योधन – देखो सूरसेन हमारी आज्ञा को न भूलो।

सूरसेन – परन्तु महाराज ! आप भी राजमद में सीमा से बाहर न फूलो।

दुर्योधन – मेरे पास धन और बल की शक्ति है।

सूरसेन – तो हमारे पास भी नम्रता और भक्ति है।

दुर्योधन – क्या तू कानूनी नुक्ते को नहीं जानता।

सूरसेन – हां कदाचित् आत्मिक बल का नतीजा नहीं पहचानता।

दुर्योधन – हमारे पास कैदखाना है।

सूरसेन – तो हम भी कृष्ण भूमि के दीवाने हैं
बन्द पिंजड़े में भी बुलबुल न चहक छोडेगी।
घिर के घनघोर में बिजली न चमक छोडेगी।

दुर्योधन – *(हँसकर)* तू बातों में हमारे शासन की मजाक उड़ाता है। चिड़िया होकर बाज से मुकाबले का साहस करता है। सूर्य की किरणों को पकड़ना, आकाश को जंजीरों में जकड़ना चाहता है।

आत्मिक बल है किताबों में फक्त इक नाम का ।
जिस की हस्ति ही नहीं फिर उसका बल किस काम का।

सूरसेन – क्या ईश्वर के दृष्टिगोचर न होने से उसके अस्तित्व से इन्कार हो सकता है।
यह वो बल है कि सारे पाशविक बल को हिलाता है।
यही बल राज को ऋषियों के चरणों पर झुकाता है।
यही था जब ऋषि प्रहलाद ने दुनियां को दिखलाया।
महा पापी पिता के राज का तख्ता उलटवाया।

दुर्योधन – *(घृणा की दृष्टि से)* परन्तु बुद्धिमान को शांति प्रिय होना आवश्यक है।

सूरसेन – नहीं, किन्तु बुद्धिमान को शुभ कर्मों का गाहक और अशुभ कर्मों का नाशक होना चाहिए।

दुर्योधन – देख तुम्हें फिर समझाता हूं।
देश-सेवा धर्म का झूंठा बहाना छोड दे।
राजनीति और खयाल बागियाना छोड दे।

सूरसेन – परन्तु मैं भी कहता हूं।
दीन दुखियों और गरीबों को सताना छोड़ दे।
क्षत्रिय कर्तव्य मे बट्टा लगाना छोड़ दे।
राज के शत्रु नहीं हम न्याय पर बलिहार हैं।
स्वत्त्व अपना मांगते हैं जिसके हम हकदार हैं।

दुर्योधन – जानता है परिणाम क्या होगा।

सूरसेन – नतीजा आत्मिक बल का समय खुद ही दिखायेगा।
भक्ति से है क्या मतलब जमाना खुद बता देगा।

दुःशासन– *(क्रोध से आगे बढ़कर)* अरे छोकरे !
अभी देखेगा सर पर काल का पहरा खडा होगा।
अभी सर तेरा खाक और खून के अन्दर पडा होगा।

सूरसेन – धर्म हित करता नहीं परवाह मैं अपने प्राण की।
एक ही पहचान बस यही शरीफ इन्सान की।
कभी सख्ती से प्रजा की यह बेदारी (जागृति) नहीं दबती।
कभी मुट्ठी में यह तलवार दुधारी नहीं दबती।
तू नंगे पांव से अजगर की छाती को दबाता है।
गलत ही आग के शोले को फूंकों से बुझाता है।

दुःशासन– *(क्रोध से हाथ को झटका देकर)* ओ बलिदान के बकरे क्यों मौत बुलाता है।

सूरसेन – मौत से किसे डराता है। धर्म पर यदि प्राण जावें तो अच्छा है।
जो निकले सत्य की खातिर बदन से जान अच्छी है।
धर्म के काम जो आये वही सन्तान अच्छी है।
अगर मेरे मरण से देश का कुछ भी भला होगा।
तो मैं खुश हूं कि ऋण इस देश का मुझसे अदा होगा।

कैदी एक – *(घबरा कर सूरसेन को समझाता है)* भाई सूरसेन महाराज को न चिढावो, क्षमा मांग कर प्राण बचाओ।

सूरसेन – गुस्से से। क्या कहा ?

कौड़ियों के साथ क्या मैं मोतियों को तोल लूं।
हीरा पन्ना के एवज क्या पत्थरों को मोल लूं।

दुःशासन— अपनी जवानी पर तरस खा और मेरे सामने से हट जा।

सूरसेन — अरे ! मौत, मौत से क्या डरा रहा है। बच्चा समझ कर धमका रहा है।
खुशी से जो कि मरना जानता है और मरता है।
वही इनसान कुछ इस जिन्दगी से लाभ करता है।
है डर मरने का उसको जो कि पापी और दुर्जन है।
मगर जो नेक है मरना उसे मुक्ति का साधन है।

दुर्योधन — क्या मनुष्य जीवन को बेकार करना चाहता है ?

कैदी एक — तुझ से भी ऊपर है कोई उसका भी कुछ ध्यान कर।
हम को मिट्टी में मिला तू यूं न आंसू जानकर।
साथ पुष्पों के हैं हम कांटे भी इस दस्तार में।
स्वत्व है आखिर हमारा भी तो कुछ संसार में।

सूरसेन — जो धर्म पर बलिदान होता है उसका जन्म वृथा नहीं जाता।
धन्य मेरे भाग हैं जो धर्म के खातिर मरूं।
हैं मेरे सौभाग्य कि जो मैं देश की सेवा करूं।
धर्म के खातिर जो मारें आप तो अहसान है।
आत्मा को धर्म पर मरने से ही निर्वाण है।

दुर्योधन — तो तैयार हो जा। *[दुर्योधन का तलवार खींच कर सूरसेन की तरफ झपटना और कृष्णजी का प्रगट होना और सूरसेन को बचाकर ले जाना। तबले का बजना और ड्राप (पर्दा) का आहिस्ते-आहिस्ते गिरना।]*

□□

अंक दूसरा

सीन पहला

(महाराजा धृतराष्ट्र का महल। भीष्म पितामह आदि का अपने-अपने स्थान पर बैठे नजर आना।)

भीष्म — यह राग रंग मुझे नहीं सुहाता और न सत्य कहे बिन रहा जाता है।
है वृथा यह राग ओ रंग और सत्य पथ से दूर है।
यहां सभा से अब दया व धर्म सब काफूर है।।

धृतराष्ट्र — कहो मन्त्रीगण। प्रजा का क्या हाल है ? क्या प्रजा का कोई दुःख है जो आप इस तरह चिंतित हो रहे हैं।

भीष्म — प्रजा के विचार बदल रहे हैं, आपको कुछ इसका भी ध्यान है ?

धृतराष्ट्र — हां निस्संदेह मैं चिन्ता मे निमग्न हो गया हूँ, प्रजा को भूल गया हूं। अब बतलाइये कि प्रजा के क्या समाचार हैं ?

भीष्म — श्रीमान् ! लाक्षागृह की करतूतो और सती द्रौपदी के अपमान की चर्चा हो रही है। पाण्डवों का स्वत्व छीनने से सारा वायुमण्डल विषमय हो रहा है और विदुरजी के बनवास ने उसको और भी विषैला कर दिया है। शासन पद्धति तथा प्रजा के विचारो ने वीरों को कायरता से भर दिया है।

धृतराष्ट्र — परन्तु द्रौपदी के अपमान का क्या उपाय है ? पाण्डवों का स्वत्त्व छीना नहीं गया किन्तु उन्होने स्वयं धर्म-बन्धन से बाध्य होकर बस्ती को छोड दिया। अब चौदह बरस से पहले इसका क्या न्याय हो सकता है ?

मन्त्री — यदि आप विदुरजी को भी बुला लें तो कुछ मामला सुधर जायेगा और राजद्रोह
का नासूर जो बह निकला है वह कुछ भर जायेगा।
जख्म दिल पर शांति का मरहम लगाना चाहिये।
है भय व अविश्वास प्रजा से हटाना चाहिये।

दुर्योधन — *(प्रवेश कर)* नहीं, विदुरजी नहीं बुलाये जा सकते।
बुला लेवें विदुरजी को तो यह शासन बदल जावे,
प्रजा बेचैन व शांति दुनियां से उठ जावे।

भीष्म — परन्तु याद रखिये सुलगती हुई अग्नि जलनेवाली से अधिक भयानक होती है।

दुर्योधन — वह कायरों के लिये ही दुःखदायक होती है, शासन-प्रणाली को आप नहीं
जान सकते। प्रजा के विचार हम ही पहचान सकते हैं।
प्रजा की रोष-अग्नि, दमन से हम बुझा देंगे।
सुलग कर भभकेगी यदि फिर तो हम बल से दबा देंगे।।

मन्त्री — युवराज ! अग्नि फूस से दबती नहीं, भडकती है।

दुर्योधन — *(हँसकर)* आप नीति को नहीं जानते, संसार की गति को नहीं पहचानते।

धृतराष्ट्र — बेटा ! मिथ्या अभिमानी न बनो। राक्षसी मार्ग पर न चलो। वह विकार है। आत्मा को नष्ट करने वाला यही एक अन्धकार है। यह मनुष्य को जलाता

है। इसके द्वारा मनुष्य विनाश के भंवर में फंस जाता है।

दुर्योधन — परन्तु विदुरजी का मन्त्री पद पर रखना साधारण बात नहीं, उनकी वक्तृत्वता हलचल मचा देगी। शांति को नष्ट कर अशांति की धारा बहा देगी।

दुःशासन — क्या महाराज यह चाहते हैं कि विदुरजी को मन्त्री बनाया जाये और सूरसेन तथा उसके साथियों को छोड़ दिया जाये ?

धृतराष्ट्र — नहीं, मेरा यह मतलब है कि विदुरजी को मन्त्री बनां प्रजा को भरमा लिया जावे और प्रजा की भड़कती हुई अग्नि को इस तरह से दबा दिया जावे। प्रजा का रोष दबी हुई चिन्गारी है, उसको शांत करना है। जावो सूरसेन आदि को छोड़ दो।

भीष्म — जो आज्ञा।

दुर्योधन — पिताजी ! सूरसेन तो स्वयं ही छूट गया। अब क्या विदुरजी को भी मंत्री बनाना न्याय है। मेरे बिना परामर्श शासन करना कहां तक उचित है, यह विचार कर लीजिये।

धृतराष्ट्र — प्रतीत होता है कि बेटा ! ईश्वर तुम्हारे खिलाफ है। अकारण ही किसी पर रोष करना नाइन्साफी है। किसी धर्मात्मा पर अत्याचार, नाकाबिल माफी है। जबकि विदुरजी सत्य की कसम खा चुके हैं तो समझलो कि अपनी भी इसमें कुछ भलाई है। निरपराधो पर अत्याचार करना पाप है।

दुर्योधन — आपकी आज्ञा से मेरा हृदय जलता है।

धृतराष्ट्र — क्यो वृथा रोष से उबलता है ?

विदुर — *(प्रवेश कर, स्वगत)* : राज है, राज है, परन्तु इसमें सच्चा सुख कहां, इसके कर्मचारियों में धर्म का अंश कहां ?

बद को साधा, नीति को लेकिन कभी साधा नहीं।
और तो सब कुछ है लेकिन धर्म मर्यादा नहीं।।

मन्त्री — *(चौंक कर उठता है और धृतराष्ट्र से कहता है)* श्रीमान् ! विदुरजी आ गये हैं।

धृतराष्ट्र — *(उठकर)* आओ भाई आओ। मेरी कृतज्ञता को अपनाओ। मुझको गले लगा कर कृतज्ञ बनाओ।

विदुरजी — *(पीछे हट कर)* राजन् ! इसके लिये कष्ट न उठाओ, अपने आसन पर विराजमान हो जाओ।

धृतराष्ट्र — *(चौंक कर)* क्यों आप पीछे क्यों हटे ?

विदुर — हटना तो एक तरफ, अन्यायी से तो बात करने में भी पाप है।

अन्यायियों से हाथ मिलाने में पाप है।
अन्यायियों से बात का करना भी पाप है।।

धृतराष्ट्र — भाई ! मैं अपने अपराधों की क्षमा चाहता हूं।

विदुर — राजन् ! मैं क्षमा कर सकता हूं किन्तु द्रौपदी के अपमान और पाण्डवों की हानि के लिये प्रजा क्षमा न करेगी।

रावण से बढ़कर आपने अनर्थ दिखा दिया।
अच्छे बुरे के भेद को दिल से भुला दिया।
मारा किसको और किसको जिला दिया।

प्रजा का कंठ अपने दमन से दबा दिया।

धृतराष्ट्र — परन्तु हमने बहुत कुछ सुधार कर दिया है। प्रजा को शांति से भर दिया है।

विदुर — जब तक द्वेष और घृणा का हृदय में अंधकार है, अन्याय और अत्याचार का वहां सत्कार है। जो द्वेष व घृणा मिट जावे तो नियत नेक हो जावे बडे छोटे का यह मतभेद मिट कर एक हो जावे तो शुभ है।
घृणा का भाव यदि जाता रहे हर एक सीने से।
तो हों प्रजा के सारे काम फिर सच्चे करीने से।

दुःशासन — *(हँसकर स्वगत)* पैदायशी आदत नहीं बदल सकती, कुत्ते की दुम सीधी नहीं हो सकती।
मुमकिन है कि टल जावे ज़लील अपने मरकज से।
लेकिन कभी तब्दील जलालत नहीं होती।

धृतराष्ट्र — विदुरजी ! अब क्षमा कीजिये और मन्त्रीपद की चौकी को अपनाइये।

विदुर — मैं अभिमान बढाने वाली चौकी नहीं चाहता। यह चौकी जो कि सिखलाती घृणा हमको भाइयों से। यह चौकी हमको सिखलाती है धोखा करना भाइयों से। गले भाइयों के कटवाती है यह चौकी ही तो भाइयों से।

धृतराष्ट्र — आप सत्य कहते हैं इसलिये हम चाहते हैं कि आप मन्त्री पद स्वीकार कर दु.खियों का दु.ख हरे, प्रजा का पालन करें।

विदुर — परन्तु जहां दुर्योधन और दु शासन जैसे हठी और दुष्ट प्रकृति के कर्मचारी मौजूद हैं वहां नीति-विद्या का मन्त्र बेसूद है। जहां नियमों और शास्त्रों को रौंदा जाता हो, बुद्धिमानों के परामर्श को सुना-अनसुना किया जाता हो और किसी ने यदि भाग्यवश कुछ कह दिया तो उसके परामर्श को अन्यायी कर्मचारियो की सम्मति से ठुकरा कर उसके मुख पर घृणा की दृष्टि से देखा जाता हो, वहां नीतिज्ञता काम नहीं देती और स्वेच्छाचारिता दुःखदायी होती है।

धृतराष्ट्र — हम आपको मन्त्रीपद का उच्च आसन देते हैं, कृपया अपनाइये।

विदुर — निर्मोही पाप के आसन को ठुकराता है और केवल न्याय चाहता है।

दुःशासन — केवल न्याय से राजकाज नहीं चल सकता, जीवन का निर्वाह नहीं हो सकता।

विदुर — *(क्रोध से)* अरे दुष्ट क्यों नीति को लजाता है। क्या उच्च पद से योग्यता आ जाती है ? क्या मन्त्री होने से बुद्धि आ जाती है।

दुर्योधन — क्या हमारे कर्मचारी प्रजा का विचार नहीं कर सकते।

विदुरजी — हाँ, चाटुकार, प्रजा पर नहीं मर सकते, स्वार्थ नहीं छोड सकते।

सूरसेन — *(एका-एक दाखिल होकर)* सत् पुरुष भी अपनी बात से कभी मुँह नहीं मोडते।

दुःशासन — अरे छोकरे ! तुझे कौन पूछता है। तू बीच में क्यों बोलता है।

सूरसेन — मैं लोभ और चाटुकारी पर नहीं मरता केवल सत्य ही मुझे बोलने पर बाध्य करता है।

दुःशासन — नहीं तुम को इससे कोई सरोकार नहीं।

सूरसेन — तो तुझे भी मुझको रोकने का कोई अधिकार नहीं।

दुःशासन — हम राज्य के विधाता और शासन में परामर्शदाता हैं।

सूरसेन – तब ही तो शासन प्रजा पर दुःख और अन्याय लाता है।

धृतराष्ट्र – *(दुःशासन व दुर्योधन से)* अरे बेटा फंद न करो मंजिल स्वीकार करने दो। प्रजा का दुःख हरने दो।

दुर्योधन – *(स्वगत)* सत्यासत्य निर्णय नहीं कर सकते। चाचाजी का व्यवहार नहीं समझ सकते। *(जाहिरा)* यदि आप बिल्ली को दूध की रखवाली सौंपना चाहते हैं तो सौंप दीजिये परन्तु याद रखिये कि भविष्य में अन्धकार होगा, प्रजा पर बलात्कार होगा।

सूरसेन – तो पिताजी ऐसा मर्तबा स्वीकार नहीं कर सकते।

धृतराष्ट्र – हम आपकी सम्पत्ति लौटाने को तैयार हैं।

विदुर – परन्तु आप से कमाये हुए धन आदि मेरे लिये बेकार हैं।

दुर्योधन – रोटी-रोजी कैसे चलेगी ?

विदुर – वही कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द देगा।

⊙ ⊙ ⊙

सीन दूसरा

(पांडवों का गाते दिखायी देना)

अब तो आओ गिरधारी, न्यायकारी कृष्ण मुरारी।
तो को रटत हैं बांके बिहारी, शीघ्र ही फिर आओ गिरधारी।।
अब तो तेरी दया बिन, हे दुःख–भंजन।
कट न सकत, यह अवधि का बंधन।।
कृपा कर शीघ्र दो दर्शन तोको रटत है 'मंडल' निशदिन।
अब तो आओ गिरधारी, न्यायकारी कृष्ण मुरारी।।

कृष्ण – *(प्रवेश कर)* मैं आप लोगों से अत्यंत प्रसन्न हूँ कि आपने नीति को जाना और धर्म को पहचाना। केवल योद्धा और रणवीर ही जगत में सम्मानित नहीं होते, किन्तु धर्मवीर भी यश और कीर्ति के अनमोल मोतियों से पूजे जाते हैं और मोक्ष का मुख्य साधन कर्तव्य ही है।

युधिष्ठिर – परन्तु शोक है कि विदुरजी जैसे नीतिज्ञ भी धृतराष्ट्र का मोह दूर न कर सके और न वह इस अवस्था में अपनी इच्छाओं पर विजय पा सके।

कृष्ण – अब विदुरजी को धृतराष्ट्र ने मन्त्री बनाया है और अन्याय और अत्याचारों को कम किया है। संभव है कि अपने कुकर्मों पर पछताता हो और अंतःकरण के शब्दों पर कान लगाता हो।

भीम – पर दुष्ट दुर्योधन से यह आशा नहीं कि प्रतिज्ञा-पूर्ति सुनकर भी हमारा राज हमको लौटा दे और भेदभाव को मिटा दे–

काग तस्मई खाने पर मल कभी तजता नहीं।
दुष्ट अपनी दुष्टता से जीते जी हटता नहीं।।
लाख मोहनभोग हों पर श्वान हड्डी खायेगा।
पाप से हरगिज न यह पापात्मा बाज आयेगा।।

द्रौपदी – *(गहरी सांस लेकर)* हा ! दुर्योधन ने हम पर क्या-क्या

किये। बचपन में माता कुन्ती सहित बस्ती में से निकाला। भीमसेन को विष दिया, नदी में डुबोया, सांपों से डसवाया। लाक्षागृह का रंग भी दुर्योधन ने ही जमाया। मेरे स्वयंवर पर भी लड़ाई ठानी। राज-सभा में चीर उतारा। छल-कपट से राज-पाट जीता, बनवास दिया। हमने प्रतिज्ञा को आपका नाम ले पूर्ण किया। क्या अब भी धैर्य और सन्तोष का बदला न मिलेगा।

कृष्ण — हां, अवश्य मिलेगा। मुझे मालूम है कि दुर्योधन पापमय विचारों से भरा पापांध हो गया है। अंधेरे में काम कर अपने को सुरक्षित समझता है। सत्य को छुपाने का प्रयत्न करता है। परन्तु...

द्रौपदी — *(बात काटकर)* यदि उसकी अतृप्ताग्नि अब भी तृप्त नहीं हुई तो क्या हम को फिर दरिद्रता में ही रहना पड़ेगा और पहले ही की भांति फिर अपमान सहना पड़ेगा—

इज्जत उसकी है क्या मेरे जलाने के लिए।
दीनता और धर्म है अपमान कराने के लिए।।
क्यों कृपा करते नहीं, शीघ्र आप दुःख मिटाने के लिए।
हे प्रभु, हम ही रहे हैं, क्या सताने के लिए।।

(शेर कहते-कहते द्रौपदी व्याकुल-सी हो जाती है)

कृष्ण — क्यों घबराती हो ? अब समय आ गया कि उसकी मूर्खता से ही उसके दुष्कर्मों का प्रकाश होगा और उसके चाटुकारों का विनाश होगा। तेरे अपमान और रुदन के बदले कौरवों की स्त्रियां रोती प्रतीत होंगी और कौरव तड़फ-तड़फ कर जान तोड़ते दिखाई देंगे।

अर्जुन — शोक है कि दुर्योधन ने किसी के उपदेश पर ध्यान नहीं दिया, किसी की बात पर कान नहीं दिया।

भीम — ज़हर शहद मिलाने से अमृत नहीं हो सकता। शून्य हृदय में प्रेम हो नहीं सकता।

भर चुका है पूर्ण घट अब उसके अत्याचार का।
बल दिखाना होगा तुमको भी धनुष-टंकार का।।
धर्म का बंधन है केवल हम को चौदह साल का।
अब पता चल जायगा, सब स्वत्व का, अधिकार का।।

कृष्ण — सत्य है कि अंतिम बार गांडीव की टंकार ही है। परन्तु समझाना नीति के अनुसार है। हम चाहते हैं कि भारत घोर संग्राम से बच जाये। इसका सुख और शांति भंग न होने पाये।

अर्जुन — हे वासुदेव, यदि ऐसा हो भी जाये तो हमारा दोष न होगा। अब तक हमने कुछ नहीं किया, प्रतिज्ञाओं को पूर्ण किया। इसलिए निवेदन है कि धर्म के अनुसार कार्य करो।

कृष्ण — जब तक धर्म तुम्हारे साथ है, समझ लो कि शक्ति और विजय तुम्हारे हाथ है।

अर्जुन — बस, केवल आप के आने की देर है। नहीं तो बिना युद्ध मिलता नहीं दिखता। सीधी अंगुलियों से घी नहीं निकलता। दुर्योधन सत्य मार्ग पर चलने वाला नहीं। दुष्ट बिना गांडीव की सहायता संभलने वाला नहीं।

कृष्ण — शांत, शांत, पहले दुर्योधन को समझा लो। अपनी निर्दोषिता युद्ध करने के विषय में दिखला दो।

युधिष्ठिर– हमें अपने स्वत्त्व से ज्यादे की दरकार नहीं। अन्याय और पाप से कमाये धन से सरोकार नहीं। जो दूसरो का धन हरते हैं, वे बेदर्द हैं, परन्तु जो अपना सहज स्वत्व दे देते हैं, वे नामर्द हैं।

कृष्ण – नहीं, मैं आप को धर्म से पतित नहीं कर सकता। ऐसा परामर्श नहीं दे सकता।

अर्जुन – तो अब आप पर ही सारा भार है, आप के अतिरिक्त कौन मददगार है ? इसलिये आप ही दूत-कार्य कीजिये। दुर्योधन से स्पष्ट उत्तर लीजिये।

कृष्ण – आप निश्चिन्त रहें, मैं सब कुछ कार्य करूंगा। और यदि न हुआ तो भी घबराहट क्या है ? तुम्हारे पास पूर्ण वरदान है। अस्त्र-शस्त्र आदि सारे सामान हैं। सच पूछिये तो–

मंदिर में और न मस्जिद गिरजा में, मैं नहीं होता।
है प्रेम की पिपासा जिसे जा पै, बस वहीं हूं।।
कर्तव्य न्यायपालन ही धर्म जिस किसी का।
है चक्र यह हमारा अज्ञाकारी बस उसीका।।

युधिष्ठिर– मेरा भी अटल विश्वास है।

पाप जब पृथ्वी पर अत्यन्त बढ़ा करते हैं।
भाई भाई का लहू चूस लिया करते हैं।।
धर्म-रक्षा के लिए दुष्टों को दण्डित करने।
आप अवतार मनुष्य रूप लिया करते हैं।।

कृष्ण – आप अपने हितकारियों को सूचित कीजिए कि प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी है। दुर्योधन को समझाने के लिए कृष्ण को नियुक्त किया गया है। यदि इस पर भी हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार हम को न दिया गया तो सत्य के पक्ष में बोलना पड़ेगा।

युधिष्ठिर– जो आज्ञा।

कृष्ण – अच्छा, अब हम विदा होते हैं।

(एक तरफ कृष्ण और दूसरी तरफ पाण्डव चले जाते हैं)

गाना

प्यारी सूरतियां दिखादे-दिखादे, मोहना।
हे मनमोहन, भव-भय-भंजन
तुम्हरे दर्शन को भटके बन-बन,
कुंजन में तान सुना दे, सुना दे,
प्यारी सूरतियां दिखादे, दिखादे मोहना।।

⊛ ⊛ ⊛

सीन तीसरा

(कौरवों की सभा– दुर्योधन, मन्त्री आदि का बैठे हुए दिखाई देना)

दुःशासन – *(दाखिल हो कर दुर्योधन से)* महाराज, आज चिन्तित कैसे बैठे हैं ?

दुर्योधन – आज मैंने एक विचित्र रहस्य देखा है। नन्दा नाई के स्वरूप में कोई मनुष्य मेरे पास आया और नन्दा का कर्तव्य पालन कर चला गया।

दुःशासन – तो आपने यह कैसे जाना कि वो नन्दा नहीं था ?
दुर्योधन – इसलिये कि उसके बाद नन्दा आया और विलम्ब के लिये क्षमा-प्रार्थी हुआ। तब यह भेद प्रकट हुआ।
दुःशासन – मैंने सुना है कि नन्दा तो स्वर्गलोक को प्राप्त हुआ।
दुर्योधन – *(आश्चर्य से)* हैं ! नन्दा और स्वर्गलोक, शोक, महाशोक।
धृतराष्ट्र – बेटा, इसमें शोक की क्या बात है ? भक्ति तो स्वयं स्वर्ग लोक का मुख्य द्वार है।

भक्त वत्सल हैं वो भक्तो के लिये मरते हैं,
भक्त के हित हर इक काम किया करते हैं।

दुर्योधन – *(हँसकर)* जरा सी भक्ति और विष्णु का लोक !
धृतराष्ट्र – हाँ।
दुःशासन – *(हँसकर)* यह न देखा कि नन्दा शूद्र और नाई है।
धृतराष्ट्र – इस मार्ग में न ब्रह्मत्व है और न शूद्रता ही है।
दुःशासन – तब ईश्वर बड़ा अन्यायी है। भिखारियों को दो रोटी खिलाई और स्वर्ग की कुंजी हाथ आई।
दुर्योधन – ओ प्रपंची कृष्ण ! यह सब तेरा ही जाल है। मैं जानता हूं, यह तेरी ही चाल है–

मैं खूब जानता हूं, जो तेरी मुराद है।
भारत में आज तेरा ही सारा फिसाद है।।

दुःशासन – तो पांडवों से पहले कृष्ण से ही निपटना चाहिए।
द्वारपाल – *(दाखिल होकर)* नरेन्द्रशिरोमणि की जय हो।

शुभ दिन है, शुभ घडी है, धन भाग हैं हमारे।
आकाश पर विमानो में हैं देवतागण सारे।।
श्रद्धा से सुरासुर नर पूजा उतारते हैं।
श्रीकृष्णजी स्वयं ही आज यहां पधारते हैं।

दुर्योधन – कृष्ण कौन ? क्या गोकुल का ग्वाला ?
धृतराष्ट्र – जाओ और उनको सत्कार से ले आओ।
(द्वारपाल जाता है और कृष्ण को ले आता है)
द्रोणाचार्य – श्री कृष्णचन्द्र आनंदकन्द का पधारना सौभाग्य को बढाने वाला और दुःखों को हरने वाला है।
दुःशासन – *(चुपके से)* हमारी राय में इस कांटे को भी निकाल दो। यदि कृष्ण कुछ भी कुटिलपन करे तो इन्हें कारागार में डाल दो।
दुर्योधन – देखा जायेगा। तुम लोग जाओ। *(दुःशासन और शकुनि जाते हैं)*
कृष्ण – आयुष्मान भूयात्। कहो महाराज कुशल तो है ? *(धृतराष्ट्र से)* महाराज को प्रणाम है।
धृतराष्ट्र – कहिए, आप का शुभागमन कैसे हुआ ?
दुर्योधन – बैठिए, कहिए, आप कहां से आए ?
कृष्ण – *(स्वतः)* अभिमान का पहला नमूना। *(प्रगट में)* मैं विराटनगर से आ रहा हूं।
दुर्योधन – *(हँसकर)* क्या आप वहीं थे ?

कृष्ण – धर्म पर आरूढ रह कर विश्व का उपकार कर। मिथ्या अभिमान को छोड़ दे। बस अब मिथ्या अभिमान को त्यागो। ईश्वर से प्रार्थना करो। सत्य का पक्ष लो। यदि सत्य के आगे सिर झुकाओगे तो तुमको क्षमा कर दिया जायेगा।

दुर्योधन – मैं ! और सिर झुकाऊं ? किस के आगे, युधिष्ठिर के आगे ?

धृतराष्ट्र – बेटा दुर्योधन, समय से लाभ उठाओ। चाटुकारों की बातों पर कान न लगाओ। यह समय टालने का नहीं, महात्मा कृष्ण की अमूल्य बातों पर विचार करने का है।

दुर्योधन – परन्तु कृष्ण ! तुमने पांडवों मे क्या देखा, जो उनका पक्ष लेते हो ? दूत का कार्य छोड कर उपदेश देते हो।

कृष्ण – उनके शुद्ध आचार।

धर्म के रक्षक हैं, सच्चे धर्माचारी हैं,
सत्यवक्ता नीतिवेत्ता सत्याग्रह-धारी हैं।
और जो है धर्मात्मा मैं भी उसी के पास हूं,
सत्य का जो पक्षपाती है, मैं उसका दास हूं।

दुर्योधन – तो अब आप क्या चाहते हैं ?

कृष्ण – बस, यही कि गांडीव धनुष अर्जुन के हाथ में आये, भीम अपनी गदा उठाये, नकुल और सहदेव के हाथो में भाला आये, राजा विराट और द्रुपद-राजकुमार के पजों में तलवारें और ढालें आयें, उससे पहले संधि करलो।

दुर्योधन – यदि आप का परामर्श न माना गया तो क्या होगा ?

कृष्ण – बुरा परिणाम होगा। भारत के बल और शौर्य तबाह होंगे। जातीयता का महल खाकस्याह होगा।

दुर्योधन – परन्तु टूटा हुआ दिल नहीं जुड सकता।

कृष्ण – दुर्योधन, तुम टेढ़ी बातों से अमूल्य अवसर को गमाओगे, एक समय आयेगा कि सिर धुनोगे और सम्बन्धियों का शोक-समाचार सुनोगे।

हिरण्यकश्यप और रावण ने भी हठ ऐसा दिखाया था।
बडी मूर्खता से अभिमान का डंका बजाया था।।

दुर्योधन – *(हँसकर)* हम ऐसे मनगढ़न्त ढकोसलों में नहीं आते।

कृष्ण – तो ऐसी अनेक कथाओं को गिन डालो। बाली के परिणाम पर भी दृष्टि डालो।

दुर्योधन – तो समय आने पर कौन संसार नहीं त्यागता ? कौन समय पर दुनियां से नहीं गुजरता ?

कृष्ण – उस समय के लिये सामग्री एकत्र करने का साधन मनुष्य-जन्म ही है।

दुर्योधन – तो फिर साफ-साफ क्यों नहीं कहते।

कृष्ण – साफ-साफ यही है कि जब तक धर्म को न अपनाओगे, एक मात्र ईश्वर को लक्ष्य न बनाओगे, नम्रता न धारोगे, परमार्थ का आश्रय न लोगे तो कितना भी पुरुषार्थ करो, वह सिद्ध न होगा। वैर और विरोध का अन्त न होगा।

धृतराष्ट्र – बेटा, यह उपदेश बड़ा कल्याणकारी है। इससे प्रजा की भलाई और कुशल तुम्हारी है।

दुर्योधन – पिताजी, क्या शास्त्र के अनुसार हमारा व्यवहार नहीं। राजनीति के अनुसार

हमारा कर्तव्य नहीं।

कृष्ण — हां, नहीं है। भाइयों में मेल कर भारत का गौरव बढाओ। फूट से शत्रुओं को बलशाली न बनाओ। अन्यथा याद रखो कि यदि फूट को मेहमान बनाओगे तो ब्याज के लालच में मूल भी गँवाओगे। जिस शरीर की रक्षा के लिये राज को दबाना चाहते हो, कहीं राज और शरीर दोनों न जाते रहें।

दुर्योधन — *(हँसकर)* इस उपदेश को पीताम्बर में बांध लो। गोपियों से माफी मांगने में काम आयेगा।

धृतराष्ट्र — बेटा दुर्योधन, महात्मा कृष्ण सत्य कहते हैं। जिस बल और पराक्रम से युद्ध रचाना चाहते हो, उसे विद्या में लगाओ, दीन व दुखियों को उठाओ। यदि ऐसा करोगे तो ब्रह्मास्त्र भी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड सकेगा। सुदर्शन चक्र भी नहीं मार सकेगा।

दुर्योधन — नहीं पिताजी, हमें एतहाद की जरूरत नहीं है, न भाइयों के इमदाद की। युद्ध से भी डरना व्यर्थ है। दु:शासन और कर्ण की सहायता से समझ लो कि मैदान अपना है।

कृष्ण — अरे पामर नीच, गौरवता भाइयों पर विजय पाने में नहीं, क्रोध आदि पर विजय पाने में है।

दुर्योधन — हे वासुदेव! समझ बूझ कर बातें करो। तुम हमारी बात-बात में निंदा करते हो, पांडवों का पक्ष लेते हो और फिर दूत कहलाने का साहस करते हो।

कृष्ण — अरे निन्दा मैं नहीं करता परन्तु निन्दा प्रजा कर रही है।

सर्वस्व अपना खोओगे तुम अपनी चूक से।
कोई भी खुश नहीं है, तुम्हारे सलूक से।।

दुर्योधन — तुम हमारे विरोधी क्यों हुए ? हमने पांडवों का क्या अपराध किया ? जुए में वो खुद हारे। वन को वो स्वयं ही सिधारे। इसमें हमारा दोष ही क्या है ? परन्तु यह याद रखिये, आधे राज्य को मांगना सहज नहीं, आकाश के चांद को मांगना है।

सात्यकी — *(गुस्से से)* दुर्योधन, मुंह सम्भाल कर बोलो, कृष्ण पर झूठे लांछन लगाते हो, किंतु खुद झूठ बोलते नहीं शरमाते हो। तुम्हारे अन्याय संसार प्रसिद्ध हैं। तुम्हारे अन्यायों के खौफ से पृथ्वी डगमगा रही है और यदि अधिक....

कृष्ण — *(बीच में ही हाथ पकड़ कर बिठा देते हैं)* यह समय क्रोध करने का नहीं *(दुर्योधन से)* मुझे विरोधी समझना तुम्हारी भूल है। अपने कर्मों के अतिरिक्त दूसरे पर लांछन करना फिजूल है। मुझे तुम्हारे कुटुम्ब अथवा जाति से वैर नहीं परन्तु सलूक से अवश्य है और यह कहे देता हूं कि यदि नहीं समझे तो खैर नहीं।

वैर है मुझको केवल आपके बर्ताव से,
है जगत संकट में तेरे निर्दयी बर्ताव से।
वैर कुछ मुझ को नहीं है शान से या मान से,
हां मगर रहता है मुझको बैर इक अभिमान से।

दुर्योधन — अभिमान, वो क्षत्रियों का श्रृंगार है।

कृष्ण — या यह कहिये कि नाश करने वाला अंगार है।

दुर्योधन — इन वचनों को गोपियों के लिये ले जाओ या किसी साधु को जाकर सुनाओ।
कृष्ण — जिस धर्म से तुझे इतनी घृणा है, समझ ले कि यही तुझे अधीन करेगा।
दुर्योधन — *(हँसकर)* हाँ, चचा विदुर भी इसी पर इतराया करते थे। इसका बल दिखाया करते थे।
कृष्ण — दुष्ट, वो इतराते ही नहीं, उन्होने दिखा दिया, तुम्हारा बल घटा दिया। तुम्हीं ने उनको बुलाया और मंत्री पद पर नियुक्त किया।
दुर्योधन — अच्छा, अब हमारे पास गंवाने के लिये फिजूल वक्त नहीं है और न देने के लिये आधा राज्य।
कृष्ण — यदि आधा नहीं तो हस्तिनापुर, कौरवनगर, इन्द्रप्रस्थ, कुन्तल, वारणावत ये पांच गांव ही दे दीजिये और पाण्डवों को अपने आधीन कर लीजिये।
दुर्योधन — सुई की नोक के बराबर भी जमीन नहीं मिल सकती केशव, पांच गांव तो बहुत हैं। तिल भर भी जगह नहीं मिल सकती।

हम लुटावें या रखें पर वो न खाने पायेंगे।
नष्ट होवे या रहे परवाह नहीं न वोह लेने पायेगे।।

कृष्ण — इसका परिणाम ?
दुर्योधन — बस संग्राम।
कृष्ण — याद रखो कि चौदह बरसों में जो शस्त्र-अस्त्र और वरदान पाये हैं, वो तुम्हें नष्ट करने में सहायक होंगे।

देंगे न राजनीति के अनुसार राज आप।
तो युद्ध में करायेगी तलवार न्याय आप।।

दुर्योधन — *(गुस्से से)* देखा जायेगा। हमारे पास भी सामग्री तैयार है, जोर और जर पर मेरा अधिकार है।
कृष्ण — शोक, महाशोक।

कान बहरे हैं तेरे सर में भरा अभिमान है।
अब जो समझावे तुझे वो आप ही नादान है।।
अल्टीमेटम का भला क्या फैसला आसान है।
पांडवों की ओर से भी युद्ध का एलान है।।

(सबका आश्चर्य में पड़ना। दुर्योधन का गुस्सा भरी निगाहों से कृष्ण की तरफ देखना। तबले का बजना। पर्दे का आहिस्ता-आहिस्ता गिरना।)

⊛ ⊛ ⊛

सीन चौथा

(स्थान-शिवालय)

(भीष्म पितामह का संध्या करते दिखाई देना और शिवा का गाते हुए प्रवेश करना।)

मिटेगा, मिटेगा दुःख महान, करो मनमोहन का ध्यान।
पतित हुए हम दीन दुःखी हैं, कैसे होवे सम्मान।।
धरो अब चक्र सुदर्शन ध्यान, करो अब जातीय उत्थान।
मिटेगा, मिटेगा दुःख....।

शिवा — ओह, बडे महाराज पूजा में बैठे हैं। अब भगवत-भजन का समय आ गया।

उधर के पट बन्द हैं। दर्शन किस तरह करना चाहिये। *(रुककर)* ऊपर से देखना चाहिये। सम्भव है कि पट खुले हों और दर्शन हो जावें। *(चढ़ना चाहता है फिर रुकता है)* परन्तु कोई चढ़ते देख लेगा तो क्या कहेगा, ..मारेगा *(कुछ रुक कर)* नहीं-नहीं, नहीं मारेगा।

कोई यदि मारेगा तो सत्य बात कह दूंगा पुकार।
ईश-दर्शन की तमन्ना उठ रही थी बार बार।।

(ऊपर चढ़ना चाहता है)

दुःशासन – *(जल्दी से दाखिल होकर)* कौन ऊपर चढ रहा है ?

शिवा – *(झिझक कर पीछे हट जाता है)* महाराज, मैं हूँ शिवा।

दुःशासन – राम-राम ! तू तो चमार मालूम पड़ता है। सूझता नहीं कि देव-मन्दिर है। चमड़े की डोलची लिये ऊपर चढा ही चला जाता है।

शिवा – महाराज, केवल दर्शनों की अभिलाषा ही मुझको खींचे लिये जा रही थी।

दुःशासन – अरे दुष्ट, तेरे साये से तो धर्म नष्ट हो जाता है। तुझ से बातें करने से मन भ्रष्ट हो जाता है–

तुम्हारा नाम लेने से जबान नापाक होती है।
हमारे द्विज वर्ण की उच्चता सब खाक होती है।।

शिवा – *(आश्चर्य से)* हैं ! क्या महाराज ! हमारे श्वास में नीचता का विकार है ? क्या हमारे हाथ में रहने से डोलची बेकार है ?

नहीं परहेज तुम करते हो कुछ छूने में जूतों के,
नहाते हो मगर अफसोस छूने से अछूतों के।
कपड़े व मृगछाला व बटुआ पास रखते हो,
पर उनके शुद्धकर्ताओं का तिरस्कार करते हो।

दुःशासन – अरे मूर्ख, चमार हो कर इतना अकड़ता है। शिवालय किन के लिये है, यह नहीं समझता है।

शिवा – स्वामी, उनकी उदारता को भी देखिये, जिन्होंने शिवालय बनवाया। और अब यह संकीर्णता देखिये कि दर्शनो से वंचित कराया। ईश्वर और सूर्य सब के लिये यकसां हैं।

नदी नहीं ऐसी कि देती नहीं जल हर एक इन्सान को।
यह फर्श खाक देती है, जगह हर इक मेहमान को।।

दुःशासन – अरे मूर्ख, तू शूद्र है, तेरे को हमारी बराबरी का अधिकार नहीं।

शिवा – तो क्या हमको आप से कोई सरोकार नहीं ?

दुःशासन – है, केवल इतना ही कि तुम द्विजों की सेवा करो। निश-दिन मेहनत से कमा कर हमारे आनन्द की वृद्धि करो। उसके बदले में केवल पेट भर रोटी लो और हमको सुख पहुंचाओ। इतना ही नहीं किन्तु तुम्हारा यह भी कर्तव्य है कि अपनी सेवा और बातों से हमको रिझाओ।

तुम अपनी बेकसी को कर्मफल से बेबसी समझो।
द्विजों की सेवा करने को ही अपनी हकरसी समझो।।

शिवा – यदि हमारी श्वास में इतना विकार है और आपको हम पर ऐसा अनुचित अधिकार है तो हमारे बनाये हुए जूते क्यों पहनते हो ? और हमारी श्वास से भ्रष्ट किये हुए आकाश में क्यो विचरते हो ?

दुःशासन – *(हिकारत आमेज लहजे में)* तुम ज्ञान नहीं रखते। इस गुप्त रहस्य को नहीं समझते।

शिवा – यदि ज्ञान का यह भाव होता तो द्विजों को उच्चगामी आकाश पर बनाया होता, पृथ्वी पर न चलाया होता–

एक ही पानी और वायु है और एक ही प्रकाश है।
शूद्र व द्विज दोनो के लिए एक ही आकाश है।।
जब नहीं है भेद कुछ इस प्राकृतिक सामान से।
भेद कहिए फिर रखे हैं आप किस प्रमाण से।।

दुःशासन – *(गुस्से से)* बस-बस। बक-बक न कर, मुंह बंद कर।

शिवा – अजी काहे दुराव मिटाओ ना, दर्शन कराओ ना, मन में लजाओ ना।

दुःशासन – अरे नीच शूद्र दूर, करे काहे को फितूर।

शिवा – रखूं हूँ मैं तो भावना, दर्शन कराओ ना। काहे दुराव मिटाओ ना।

दुःशासन – यह क्या तूने मन में ठानी, कब से हुआ ज्ञानी-ध्यानी।

शिवा – हमको सताओ ना, जी को दुखाओ ना। दर्शन कराओ ना, काहे दुराव मिटाओ ना।

दुःशासन – चल हट निपट, करे काहे झंझट, अभी होगी खटपट।

शिवा – प्रभु, नज़रों से हमें गिराओ ना, जी को दुखाओ ना।
दर्शन कराओ ना, काहे दुराव मिटाओ ना।

सूरसेन – (दाखिल होकर) क्यों दुःशासन, क्यों लड रहा है इस बिचारे से क्यों झगड़ रहा है ?

शिवा – (सूरसेन से) महाराज, आप ही बताइये, क्या हम जीवधारी मनुष्य नहीं ? यह कैसा अनर्थ है कि खाल की चरस से तो जल अशुद्ध न हो, पखाल और मश्क के जल में दोष न हो परन्तु उसके बनाने वाले का साया तक अपवित्र समझा जावे–

रखते हैं दो हाथ व पांव हम भी तुम्हारी ही तरह।
दिल है और दिल में आशाएं हैं तुम्हारी ही तरह।।
हम भी बंदे, उसी भगवान के रहमान के।
क्यो घृणा उत्पन्न हुई है, मानुषी सन्तान से।।

दुःशासन – अरे दुष्ट। तू नहीं समझता कि यदि ऐसा न होता तो शूद्र के घर में जन्म क्यों लेता ?

सूरसेन – छोटे-बडे का भेद अज्ञानता का निशान है–

धर्म कहता है यही हर दीन का यह अपमान है।
कर्म भूमि है, यहां पर कर्म ही प्रधान है।।
कर्म जो अच्छे करे, वह शुद्ध और विद्वान है।
कर्म हो यदि नीच तो वह शुद्रवत् इन्सान है।।

दुःशासन – लडके, क्या तू इसे अपवित्र नहीं समझता ? इसको दर्शन करा सकता है ?

सूरसेन – हां, ईश्वर न्यायकारी है। उसके दर्शनों का हर मनुष्य समान अधिकारी है। *(अन्दर जाकर खिड़की खोलता है और कहता है, लो दर्शन करो)*

दुःशासन – राम ! राम !! अरे लडके तूने यह क्या किया ! इसकी पापमय दृष्टि को शिवजी तक पहुंचा दिया।

कुछ न सोचा धर्म के सम्मान को, अपमान को।
दे दिया क्यों मान इतना नीचतर इन्सान को।।

सूरसेन – धर्म घृणा नहीं, प्रेम सिखाता है। निर्दयता नहीं, प्रेम का भाव लाता है–
जिस धर्म में अहिंसा दया समता नहीं।
जिस धर्म में मनुष्यों में मिलना रवां नहीं।।
जिस धर्म पर चढ़ा घृणा का रंग है।
वह धर्म क्या, पेट की पूजा का ढंग है।।

शिवा – शोक, शोक। महाराज, आप इस समय तो मेरे साये से घबराते हैं परन्तु उस समय नहीं विचारते जब बडे-बडे ब्राह्मण गधे की खालों में तैयार हुआ सुल्फा पी जाते हैं। क्या खांड और गुड़ को हम अपने हाथों से नहीं बनाते हैं, जिसके बिना आप लुक्मा भी नहीं उठाते हैं।

सूरसेन – यह सत्य कहता है। ज़रा बुद्धि से विचारो और न्याय की दृष्टि से इस आडम्बर को निकालो–
अब भी क्या इस एकता के भेद से इन्कार है।
गौर से देखो तो जात और पांत सब बेकार है।।

दुःशासन – परन्तु खुश्क वस्तु मे दोष नहीं, चाहे वह चमड़ा ही क्यों न हो। इसलिए कमर-पट्टा आदि पर लांछन लगाना फिजूल है।

सूरसेन – तो क्या गंगाजी में एक समय चारों वर्ण स्नान नहीं करते ? प्रकाश में द्विज और शूद्र एक साथ नहीं निकलते। विराट पुरुष के चारों वर्ण जब अंग हैं तो फिर वृथा अभिमान-वश यह भेद रखना ठीक नहीं।

शिवा – *(हाथ जोड़ कर सूरसेन से)* महाराज, ऐसा न कहिए। यह भेदभाव फिजूल नहीं। यह मन-घडन्त उसूल नहीं, इसमें कुछ सार अवश्य है–
ऐसा क्या मानने वाले करोड़ों लोग अन्धे हैं।
यह हिन्दू धर्म बता, क्या फक्त रोटी के धन्धे हैं।।
नहीं, यह अंधेर नहीं, समझ का फेर है। यह वर्ण-व्यवस्था कर्मानुसार है। हाथ, पांव, पेट के लिये आदमी का अपना-अपना व्यौहार है। हम अविद्यावश अर्थों के अनर्थ लगाने लगे। जन्म-अभिमान से नीच कर्म करते हुए भी भाइयों को ठुकराने लगे-
देश की आपत्तियों से अपनी जाति घिर गई।
घट गये बल-बुद्धि जातीय इमारत गिर गई।।
तुम्हारी ही हस्ती के ढंग ने हमको गिरा दिया।
बुरे चाल-ढाल ने इस दशा को पहुंचा दिया।।

दुःशासन – हां, सत्य है। मैं मानता हूं कि बाहर से देख कर हृदय का पता नहीं लग सकता।

सूरसेन – तुम्हीं विचारो कि हम उनकी सेवा से ही मालदार होते हैं और फिर उनकी कमाई दौलत से उनको नीचे गिराने की कृतघ्नता से चेष्टा करते हैं। दीनों की दशा से आंखें चुराते हैं। दुःखी के आंसुओं को दूध की तरह पी जाते हैं। इसीलिए कंगाली उनके पीछे पड़ी है। *(साइडिंग में देखकर)* अच्छा, महारानी द्रौपदी आ रही हैं। अब चल देना चाहिए। ***(दोनों चले जाते हैं)***

⊙ ⊙ ⊙

सीन पाँचवाँ

(कृष्ण का गाते हुए प्रवेश करना)

गाना

उठो उठो हे नगर निवासी ! नशे में डूबे रहोगे कब तक ।
प्रकाश-सूरज को बादलों में, छिपाये हुए तुम रखोगे कब तक।।
जो धर्म घातक हैं, अपने पापो से खुद ही होते अखिर।
अनीतियों के अग्नि-दाह में पडे पुकारा करोगे कब तक।।

घन श्याम सूर्य के प्रकाश को नहीं छिपा सकता। पापी का क्रूर हाथ धर्म की ज्योति को नहीं बुझा सकता। अन्यायी भ्रष्ट हो जाता है। धर्म-घातक स्वयं ही नष्ट हो जाता है। मैंने केवल दूतपद इसलिए स्वीकार किया कि दुनियां यह न कहे कि कृष्ण छलिया था, उसी ने घोर संग्राम कराया, वैरियो को दुनियां से उठाया। परन्तु मेरा उद्योग सफल हुआ। मैंने कई बार दुर्योधन को समझाया, परन्तु वह सत्य-मार्ग पर नहीं आया। अब कृष्ण निर्दोष है, धर्मयुद्ध अवश्य होगा। असत्य का नाश होकर सत्य का प्रकाश होगा। मुझे धर्म का साथ देना होगा, पांडवों का पक्ष लेना होगा–

जो पापी धर्म हानि करते हैं उनको मिटाता हूं।
महाभारत में भारत की भलाई को कराता हूं।

विदुर – *(दाखिल होकर)* कहो कृष्णदेव, दुर्योधन को समझाने का कुछ फल हुआ।
कृष्ण – ऊसर मे बीज डालने की भांति मेरा कहना-सुनना सब निष्फल हुआ।
विदुर – तो क्या परिणाम होगा?
कृष्ण – बुरा अंजाम होगा, घोर संग्राम होगा।
विदुर – आह ! बुरा काम होगा।
कृष्ण – भारत में अधर्म का काम तमाम होगा।
न बीज होगा न फल लगेगा, न होगा पापी न पाप होगा।
न बांस होगा न होगी बंसी, अग्नि होगी न ताप होगा।
विदुर – क्या कुछ भी नहीं सुनता ?
कृष्ण – तिल मात्र भी जगह नहीं देता।
विदुर – परन्तु प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी अब तो युधिष्ठिर को राज का अधिकार है।
कृष्ण – तो उसको राज से वंचित करना भी दुश्वार है।
विदुर – तो क्या सम्पदा पर वह इस कदर मरता है ?
कृष्ण – लोभी कभी भी धन को जुदा करता है ? वह तो मर कर ही उसे विदा करता है।
विदुर – मतलब यह है कि भारत का नाश निःसंदेह है।
कृष्ण – हां, भारत से पापों का बोझ उतरना अवश्यंभावी है।
विदुर – तो क्या दुर्योधन हठ से बाज न आवेगा !
कृष्ण – हां, भाले बिना बारहसिंघा न घबरायेगा–
जब तक शिकारी न पकड़े जल-श्वान नहीं चिल्लाता।
पहाड के नीचे आये बिना ऊंट नहीं घबराता।।
अब कहिए, आप का क्या विचार है ?

विदुर – बस यही कि ऊपलू नगर में जाकर पांडवों से कह दो कि अब तरह देना बेकार है। यदि भारत के उद्धार का विचार है तो लडने को तैयार हो जावो। यदि छत्राणी का दूध पीया, हाथ-पांवों में जान है, शरीर में बल, मस्तिष्क में जाति-अभिमान है, तो माता के दूध की धार का ऋण अदा करो। मृगछाला और माला को त्याग कर क्षत्रियवत् शस्त्र धारो।

कृष्ण – तथास्तु !

विदुर – और कह देना कि राज जैसी वस्तु मांगने से नहीं मिलती। बल और पराक्रम से मिलती है। और अर्जुन के लिए तो आकाशवाणी हो चुकी है कि वह दुष्टों का विनाश करेगा। राज्य उसका लोहा मान जायेगा। दुष्ट उसके आगे सर झुकायेंगे।

कृष्ण – सत्य है।

विदुर – और यह भी कहना कि अब गांडीव को रण में टंकारना होगा और क्षत्रियवत् या तो मारना होगा अन्यथा राज के लिए मरना होगा।

कृष्ण – तथास्तु।

विदुर – और भीम को उसकी प्रतिज्ञा याद दिलाना और कहना कि द्रौपदी के अपमान का बदला अवश्य चुकाना अन्यथा अपनी माता को मुंह न दिखाना।

कृष्ण – तथास्तु। परन्तु अब यह युद्ध रचना है। इसलिए प्रजा के विचारों का पता लगाना है। अब घर चलना चाहिए और दुनियां को दिखाना चाहिए कि जिस अभिमानी के यहां अभक्ति का विचार था, वहां भोजन करना भी हमारे लिए दुश्वार था–

जिसे प्रेम है दीनो दु:ख से उसे प्यार करता हूं।
मिटा कर संदेह झूठा, धर्म का प्रचार करता हूं।।
अभक्तों के मैं हर मिष्ठान्न से इन्कार करता हूं।
परन्तु भक्त के अर्चन को मैं स्वीकार करता हूं।।
नहीं परवाह बासी हो कढी या तुर्स होने का ।
मगर है शर्त अवश्य हो भोजन प्रेम-भक्ति का।।

विदुर – जो आज्ञा, पधारिए। दास की कुटिया को पवित्र कीजिए।

⊛ ⊛ ⊛

सीन छठा

(महात्मा विदुर का स्थान। वसुमति का गाते दिखाई देना)

गाना

धन्य-धन्य भारत पूज्य भूमि
देवभूमि भी तुझ से बढकर कभी सुनने मे नहीं आई।।
आद-अन्त तू जल-थल-बल्कल तन-मन संतन में व्यापक तू।
है तू शक्ति, तेरे बल से होती मुक्ति।।
धन्य–धन्य...........।

सूरसेन — मातेश्वरी ! मैंने सुना है, श्री कृष्णचन्द, आनंदकद राजसभा में दुर्योधन को समझाने और युद्ध का डंका बजाने के लिए पधारे हैं।

वसुमति — तो क्या वह दीनबन्धु द्वारकानाथ इस स्थान को पवित्र न करेंगे ? अपने दर्शनों से हम लोगो को कृत-कृत्य न करेगे ?

सूरसेन — कदाचित न आवे क्योकि कहां हम अनाथ, कहां वह त्रिलोकीनाथ—
गरीबी हर तरफ जिस घर में और बाहर बरसती हो।
जहा दीवार साये के लिये छत को तरसती हो।।

वसुमति — न वह महलों के भूखे हैं, न मिष्ठान्न के भूखे हैं। केवल सच्चे प्रेम के भूखे हैं। यदि हमारा सच्चा प्रेम है तो अवश्य ही आयेगे। अगर प्रेम सच्चा है और श्रद्धा है तो कच्चे धागे मे बंधे चले आयेंगे, श्रीकृष्ण।

सूरसेन — यदि दुष्ट दुर्योधन ने हमको न सताया होता, पिताजी को अविश्वासी न बताया होता, तो आज हम भी बडे आदमी कहलाते, घर बैठे ही बडे आदमियो के दर्शन पाते।

वसुमति — नहीं, यह तुम्हारा भ्रम है। यदि सुख और आराम होता तो श्रीकृष्ण का नाम स्मरण न होता—
यह सुख है वह बला जिसमे कि धर्म हाथो से जाता है।
हमे तो धन्य दु.ख यह, जो नाम ईश्वर रटाता है।

सूरसेन — *(बाहर की और देखकर और खुश होकर)* अहा ! माता, धन्य है। श्रीकृष्ण पिताजी के साथ इधर आ रहे हैं—
हमारी खुशनसीबी के लिए श्याम आते हैं।
पिता के साथ खुद चल करके अब घनश्याम आते हैं।।

वसुमति — मैंने तो पहले ही कहा था—
नम्रता के हैं सहायक, साथी अभिमान के नहीं।
दीनव्रत पालक हैं, वह सारथी धनवान के नहीं।।

वसुमति — कहां मैं और कहा भगवान्। कहां द्वारकानाथ और कहा यह दु खों का स्थान—
सौभाग है कि भाग का तारा चमक गया।
फसल बहार देख के बुलबुल चहक गया।

कृष्ण — देवी ! हस्तिनापुर रहने की इच्छा थी किंतु तुम्हारे दर्शनों की अभिलाषा मुझे ले आई। प्रेम की आकर्षण शक्ति मुझे खींच लाई—
अभक्ति जिन को प्यारी है, वह कब भक्तों से मिलते हैं।
हमें आनंद तब होता है, जब भक्तों से मिलते हैं।

वसुमति — सत्य है भक्तवत्सल ! आपने भक्तों के हित ही यह जन्म धारा है।

सूरसेन — महाराज, हम जैसों को निशदिन आप ही का सहारा है—
फिर रहे हैं आप निशदिन भक्त ही के काम में ।
यदि दुःखी हैं भक्त तो तुम कब रहे आराम मे।।

कृष्ण — हां, यह सत्य है, भक्तों के प्रेम ने ही हम से वैकुंठ छुड़ाया है। इसी भक्ति ने हमको मृत्युलोक में पहुंचाया है—
मगन रहता हूं सदा मैं भक्तों ही के ध्यान में।
मैं बिताता हूं समय भक्तों ही के कल्याण में।।

सूरसेन – भक्त अकडे फिरते हैं बस, आप ही की शान में।

वसुमति – धन्य है–

देव ज्योति से प्रकाशित बाहर-अन्दर हो गया।
धन्य यह स्थान है, जो देव मन्दिर हो गया।।

सूरसेन – हे देवकीनंदन ! कंशनिकंदन ! आगे पधारिए और इस स्थान को अपने पवित्र चरण-कमलों से पवित्र कीजिए–

जग ढूंढता है जिसको गंगा में नर्मदा में।
ढूंढे है कोई बैठा कैलास की गुफा में।।
खोजे है जिसको ऋषि बस्ती में और वन में।
वह दीनबन्धु स्वामी आये मेरे भवन में।।

वसुमति – लो बेटा सूरसेन, चरण-कमलों की रज से अपने को पवित्र करो–

चरण की धूर सुरमा है, हृदय की आंख खुलती है।
करो यदि पान चरणामृत मन की मैल धुलती है।

कृष्ण – विदुरजी, अब देर होती है। ऊपलू नगर जाना है और यहां का समाचार सुनाना है।

वसुमति – प्रभु, यद्यपि मुझे कहते लज्जा आती है तथापि यदि अनुचित न हो तो भोजन कर कृतार्थ कीजिए।

कृष्ण – कुछ तैयार है ?

वसुमति – महाराज, आपके योग्य क्या सामग्री लाऊं, क्या भेंट चढाऊं ! केवल प्रेमाश्रु हैं, चरण-कमलों पर चढाती हूं– क्या कमी है आप को मुक्ता-मणि और लाल की। पुष्प-पुजा ही करो स्वीकार तुम कंगाल की।। रसोई अभी तैयार होती है।

कृष्ण – नहीं, रसोई की कोई आवश्यकता नहीं । तुम्हारे पास क्या है ?

वसुमति – *(शाक की ओर देखकर)* महाराज, यह तो कच्चा शाक है। आपके योग्य नहीं।

कृष्ण – देवी, यह प्राकृतिक भोजन है, इससे अच्छी कोई वस्तु नहीं। नीच-ऊंच हम नहीं मानते, केवल भाव को पहचानते हैं–

शबरी के जूठे बेरों को खाया था प्रेम से।
माखन चुरा-चुरा के लुटाया था प्रेम से।
मत समझो पत्ते इनको यह रूखे हैं शाक के।
है धन्य शाक हमको कि भूखे हैं भाव के।।

सूरसेन – *(हाथ जोडकर)* महाराज, जब दुर्योधन के पकवान ही आपने त्याग दिये तो यह शाक क्या स्वादिष्ट वस्तु है ?

कृष्ण – पकवान स्वादवश नहीं त्यागे, किंतु वहां अभक्ति थी, इसलिए वहां से भागे–

प्रेम की खिचडी है बढिया कीमती पकवान से।
प्रेम की बासी कढी स्वादिष्ट है मिष्ठान्न से।।
और प्रेम का खद्दर है आला कामदानी थान से।
उच्चतर है प्रेम कुटिया राज के भी स्थान से।।

विदुर – हां सत्य है। भगवान का वास बादशाही महलों में नहीं, किन्तु गरीबो की झौपडियों में है–

गरीब गर्मी में जिस जगह पै बैठ पत्थर को तोडता है।
जहां पै टुकडे फटे-पुराने चमार-जूतों के जोड़ता है।।
जहां पै होगी दरिद्रता कुछ वहीं पै दीनों का वास होगा।
वहीं पै भगवान मिलेंगे तुमको वहीं पै उनका वास होगा।।

कृष्ण – *(शाक खाकर)* वाह देवी वाह ! यह शाक तो बड़ा स्वादिष्ट है–
बहुत भोजन जसोदा ने भी हाथों से बनाये हैं।
बहुत पकवान गोपियों और ग्वालों ने खिलाये हैं।।
वनों में रहके भी हमने बहुत फल-फूल खाये हैं।
पदारथ यों तो हरेक भांत के खाने में आये हैं।
न तप यज्ञ-याग से मिलता न वैराग से मिलता है।
बडा स्वादिष्ट यह भोजन है भागों ही से मिलता है।

वसुमति – आह ! आज तो मेरे भाग पर इन्द्र भी ईर्ष्या करेगा।

कृष्ण – अच्छा, अब हम विदा चाहते हैं।

विदुर – प्रभु, मेरी क्या सामर्थ्य कि मैं जाने को कहूं।

सूरसेन – परन्तु महाराज, सावधानी से जाइए।

विदुर – क्यों ?

सूरसेन – भय है।

कृष्ण – किस बात का ?

सूरसेन – दुर्योधन ने आपके कैद की विचारी है।

कृष्ण – ओह ! हम जानते हैं–
कर रहा है वह जो मुझ को कैद करने का विचार।
जान लो अब भाग में उसके लिखा है कारागार।।
वास्ते गरीबों के अब वह खोदता है जो कुआं।
आप ही गिर करके डूबेगा निश्चय ही वह वहां।।
(कृष्ण और विदुर जाते हैं)

सूरसेन – माता, बहुत बुरा हुआ ! मैं शिवा चमार को छूकर आया था और उन्हीं हाथों से फल आपको दिये थे, जो यदुनाथ ने खाये थे।

वसुमति – हैं ! शिवा चमार को छुये हुए हाथों से फल कृष्णजी को खिला दिये, तो बस अब जाओ और उनसे क्षमा मांगो। अभी वह ज्यादा दूर न गये होंगे।

सूरसेन – जो आज्ञा । *(जाता है)*

वसुमति – *(गाना)*
प्रभु कर दो अब भारत उद्धार !
छन छन बढत जात दुर्योधन के अत्याचार।।
जब-जब भक्त पडे संकट में तुम को ही की पुकार।
प्रभु कर दो अब भारत उद्धार ।
घट्यो धर्म और अधर्म बाढ्यो गौ पर अब हा ! चलत कुठार।
दु शासन से शीघ्र बचाओ भारत जगदाधार।
प्रभु कर दो अब भारत उद्धार

⊛ ⊛ ⊛

सीन सातवाँ

(कृष्ण और विदुर का बातें करते दाखिल होना)

कृष्ण — आपने लोगों के विचार नहीं बताये, युधिष्ठिर के प्रति कैसे विचार हैं।

विदुर — आप की कृपा से कार्य में सफलता होगी। इस शासन की क्षीणता होगी। दुर्योधन और उसके साथियों से प्रजा दुःखी है और अत्याचारों से तंग आकर प्रजा की आंख अब उसी ओर लगी है।

कृष्ण — मैं तो युद्ध की घोषणा कर चुका। आज से दसवें दिन अमावस्या को युद्ध प्रारंभ होगा।

विदुर — क्या इसके अतिरिक्त अब और कोई उपाय नहीं ?

कृष्ण — हां, अन्यायिओं के सामने धर्मात्मा नि सहाय कहे जाते हैं। इसलिए अब अधर्म का बदला चुकेगा। अन्याय और अत्याचार मिटेगा। धर्म स्थापन होगा।

धर्म का सूरज चढेगा सत्य के आकाश में।
न्याय का प्रचार होगा धर्म के प्रकाश में।।
जो है पापी वह सजा अपने किये की पायेगा।
धर्म का झण्डा बस अब आकाश में लहरायेगा।।

विदुर — आप निश्चित रहें। प्रजा धर्म पर आरूढ है। अन्याय से कोसों दूर है। यदि धर्मराज इधर को आयेंगे तो प्रजा को बतायेंगे।

कृष्ण — *(साइडिंग में देखकर खुद-ब-खुद)* सामने से एक मनुष्य आता है। उससे पूछना चाहिए। विदुरजी की बातों को परखना चाहिए।

सूरसेन — *(एक तरफ से दाखिल होकर)* क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए। महाराज ! अपराध हुवा।

कृष्ण — क्यों, क्यों, क्या अपराध हुवा ?

सूरसेन — महाराज, जो फल आपने खाये हैं, मैंने वे उन्हीं हाथों से दिये जिन हाथों से शिवा चमार को छूवा था।

कृष्ण — मेरे साथ आओ। मैं तुम्हारा सन्देह मिटाता हूं। *(कृष्ण सूरसेन को लेकर चले जाते हैं)*

कृष्ण — *(शिवा को दूसरी ओर से आते देखकर हाथ पकड़ कर रोकते हैं)* कहो, दुर्योधन के प्रति तुम्हारे क्या विचार हैं ?

शिवा — महाराज, वह सरदार है, हमारा उनका क्या सरोकार है। *(कृष्ण को पहचान कर)* हैं ! यह मैं क्या देखता हूं। कहां मैं अनाथ, कहां यदुकुलनाथ !

गाना

शिवा — धन-धन हमारे भाग्य, धन्य प्रभु, धन-धन कृष्ण मुरारी।

सूरसेन — जन नायक, जग नायक, दीन सहायक, आश्रयदायक गिरधारी।।

शिवा — पातक हरणा, संकट हरणा, अशरण शरणा।

सूरसेन — जग-सुख दाता, भवभय त्राता।

शिवा — तुम दीनदयाला, हो कृपाला, करो मुक्त अब बनवारी।

सूरसेन — हे ! जगकारी भवभय हारी।

शिवा — धन–धन हमारे भाग्य, धन प्रभु, धन-धन कृष्ण मुरारी।

कृष्ण – *(कृष्ण शिवा को दोनों हाथों से उठाकर)* भक्त, तुम क्या कह रहे हो ! क्या तुम विधाता की सृष्टि में पैदा नहीं हुवे–

हो अच्छे या बुरे सब एक ही रास्ते से आये हो।
बडे हो या कि छोटे एक ही माता के जाये हो।।
नहीं परवा हमको यह बडा या कि छोटा है।
हमें तो देखना है बस खरा या दिल का खोटा है।।

सूरसेन – *(आश्चर्य से)* भगवन, मेरा संदेह दूर कीजिए।

कृष्ण – क्या संदेह है ?

सूरसेन – दुर्योधन जैसे अधिपति का तिरस्कार और एक चमार की ऊल-जलूल प्रार्थना स्वीकार ?

कृष्ण – शांत ! इस चमार के आगे अपना सिर झुकाओ। यह चमार नहीं बडा भारी भक्त है।

सूरसेन – भगवन्, इसका कारण ?

कृष्ण – क्या तुझे नहीं मालूम कि यह कौन है और तू कौन ?

सूरसेन – हाँ, मैं जानता हूं कि मैं एक छत्रिय-पुत्र हूं ।

कृष्ण – क्या ईर्ष्या और द्वेष में अपने आपको न पहचानना, ईश्वर को अपनी जागीर समझना भ्रम नहीं है।

सूरसेन – हां, है। परन्तु और स्पष्ट कीजिए।

कृष्ण – तेरे देह रूपी मंदिर का मसाला संस्कारपूर्वक संचय नहीं किया गया, इसका विकार है।

विदुर – *(आश्चर्य से)* नहीं, नहीं, महाराज ! आप क्या कहते हैं ?

कृष्ण – हां, सत्य कहता हूं। जो ईंटें माता के गर्भरूपी पजावे में पवित्र प्रेम की अग्नि से नहीं पकती बल्कि कामदेव की गर्मी से तैयार होती हैं, वे आत्माएं विद्वान होकर भी भ्रम के जाल में गिरफ्तार होती हैं।

विदुर – सत्य है, जो औलादें शास्त्रानुसार पैदा की जाती हैं, वही धर्म का सच्चा मार्ग पाती हैं।

सूरसेन – क्षमा कीजिए, मुझे अपने अपराधों का जो भ्रम था, उसका कारण यही था, सत्यासत्य का मुझे न मर्म था। मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर इसको नमस्कार करता हूं।

विदुर – परन्तु महाराज, आपने लौकिक रीति को त्याग दिया। एक छत्रिय-पुत्र को शिवा के आगे झुका दिया। इसका क्या कारण है ?

कृष्ण – इसके लिए दिव्य दृष्टि दरकार है। परन्तु मैं तुम्हारा संदेह मिटाता हूं। अनर्थ का अर्थ समझाता हूं–

मिटाता हूं अभी मैं आपके गन्दे खयालों को।
अभी मैं तोड़ता हूं आपकी धोखे की चालों को।।
अभी पिछडे हुए भाइयों को मैं यकजां करता हूं।
अभी इस शूद्र शिवा को मैं द्विज प्रमाण करता हूं।।

विदुर – उपकार, देवकीनंदन ! उपकार।

कृष्ण – इस आत्मा ने शाप के वशीभूत हो यह दुःख झेला अन्यथा यह चमार नहीं ब्राह्मण का पुत्र है और एक ऋषि का चेला है। *(विदुर और सूरसेन को चकित देखकर)* इसमे विस्मय करने की बात नहीं, प्रमाण बतलाता हूं। सच्ची परीक्षा कर दिखाता हूं। *(शिवा का सीना चीर कर दिखाते हैं)* इधर देखो, यह खाल के अन्दर यज्ञोपवीत मौजूद है। *(सब का झुककर चकित होना। शिवा का हरे-कृष्ण हरे-कृष्ण की रट लगाना। तबले का बजना। ड्राप का आहिस्ता-आहिस्ता गिरना)।*

□□

सीन पहला

(युधिष्ठिर आदि का ऊपलू नगर में बैठा दिखाई देना)

युधिष्ठिर – तो क्या दुर्योधन ने राजनीति का पालन नहीं किया, जो इस तरह दूत का अपमान किया ?

कृष्ण – मैंने उसे बहुत समझाया। वह मदान्ध हो रहा है। किसी की कुछ नहीं सुनता।

युधिष्ठिर – तो क्या बिना युद्ध, छीना हुआ राज्य भी मिलना दुश्वार है ?

कृष्ण – हां, ऐसा ही प्रतीत होता है कि उसको युद्ध करना ही स्वीकार है।

भीम – तब देर करना बेकार है। मैंने पहले ही कहा था कि वह धर्माधर्म की परवाह नहीं करता। लातों का देव, बातों से नहीं माना करता।

अर्जुन – विदुरजी का क्या वचन है और माता का क्या कथन है ?

कृष्ण – दुर्योधन ने विदुरजी के साथ भी दुर्व्यवहार किया। इसलिये उन्होंने भी निश्चय किया है कि आप लोग युद्ध करें। वे तीर्थयात्रा पर चले जाये और युद्ध समाप्त होने पर आये। माताजी की भी यही आज्ञा है कि क्षत्रीव्रत धर्म का पालन करना और दुष्टों को नीचा दिखाना चाहिये।

अर्जुन – यदि ऐसा है तो समय व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। युद्ध की तैयारी में लगना चाहिये।

भीम – जब श्री कृष्ण युद्ध की घोषणा कर आये हैं, अपनी निर्दोषता का प्रमाण दे आये हैं, तब सोच-विचार फिजूल है। युद्ध नियमानुकूल है।

युधिष्ठिर – परन्तु किसी कार्य के करने से पहले सोच लेना चाहिए कि उसका परिणाम क्या होगा ?

भीम – बस परिणाम यही होगा कि पापमय दुर्गों पर धर्म की धजा लहरायेगी। अन्यायी की जगह न्यायी के हाथ आयेगी। शक्ति का सद्-व्यौहार किया जाएगा। द्रौपदी के अपमान का बदला प्रत्यक्ष रूप मे लिया जाएगा और दुनियां को दिखलाया जाएगा–

अन्यायी का शासन सदा रहता नहीं।
जुल्म अत्याचार का पौधा कभी फलता नहीं।।

कृष्ण – होनी अनिवार्य है, यह टलने वाली नहीं।

युधिष्ठिर – तुम सत्य कहते हो कि होनी टलने वाली नहीं परन्तु भय है तो यह कि छत्रियों के लहू का सागर भरेगा। भारत वीरो से हीन होकर रहेगा। नवयुवती स्त्रियो के सुहाग नष्ट होगे। देश के आचार–विचार भ्रष्ट होगे।

कृष्ण – हां, यह तो सब होगा ही। इतिहास बतलायेगा कि अन्यायी कौरवों ने अपने शासन की नींव को नवयुवकों का लहू पिलाया। सत्य को दबाने के लिये निर्दयता से नव-युवतियो को विधवा बनाया। अपने क्रूर हाथों से सभ्यता

का खाका तुडवाया। सभ्यता का सिर नीचा होगा। निर्दोष रण में काम आयेंगे। वीरों और असली क्षत्रियों के नाम केवल पुस्तकों की शोभा बढ़ायेंगे। परन्तु सत्य का बोलबाला होगा और अधर्म और अत्याचार का मुंह काला होगा। दुनियां देखेगी कि–

एक दिन गिरता है वो पापों से जिसको प्रीत है।
पाप कितना ही उठे आखिर धर्म की जीत है।।

युधिष्ठिर – परन्तु आप दु:शासन के पीछे क्यों पडे हैं ? दुर्योधन के विरुद्ध क्यो अडे हैं ?

कृष्ण – इसलिये कि अब क्षत्रियत्व का पालन नहीं होता। प्रजा का वास्तविक रक्षण नहीं होता। पवित्र पुस्तकों में राज और न्याय का वही अधिकारी है, जो न्याय और धर्म पर कायम है, प्रजा को संतानवत् पाले, अपनी पराई पर समान दृष्टि डाले–

सरे मैदान जो अबलाओं पर अत्याचार करते हैं।
पराये धन को लेते हैं व दुर्व्यवहार करते हैं।
जो दृष्टि पाप मय रखे, प्रजा को लूटकर खाये।
नहीं इस योग्य वह हरगिज रखा अधिकारो पे जाये।।

युधिष्ठिर – *(हँसकर)* क्या ऐसा भी शास्त्रों का प्रमाण मिल सकता है ? क्या मौरूसी राज भी छीना जा सकता है ?

कृष्ण – हां इसमें भी यजुर्वेद का प्रमाण है। यदि किसी को राज-अभिमान है, प्रजा के अधीन नहीं जो, धर्मज्ञ और कुलीन नहीं, वो राज का अधिकारी नहीं।

क्या कभी तुमने सुना दुखियों के सौजो-साज को ?
क्या कभी जाकर सुना दीनों की भी आवाज को ?
क्या कभी निर्दोषों के दुखड़े सुने हैं आपने ?
क्या कभी अभियुक्त के पोंछे हैं आंसू आपने ?

युधिष्ठिर – तो क्या इस युद्ध में प्रजा कौरवों का साथ न देगी ?

नकुल – नहीं, बिल्कुल नहीं। यदि कौरवों ने सुख और शांति में मदान्ध होकर समय न गुमाया होता, प्रजा की पुकार पर कान लगाया होता, उसके दुखों मे हाथ बटाया होता तो आज प्रजा उनकी तरफदार होती, जान देने को तैयार होती–

कांटे में सौदा तुलता है, यह न्याय-धर्म की बस्ती है।
इस हाथ करो, उस हाथ भरो, यह सौदा दस्त-बदस्ती है।

युधिष्ठिर – क्या अब वो प्रजा को नहीं अपना सकता ?

सहदेव – हां, बढा हुआ पर्दा नहीं रोका जा सकता। स्वार्थ का सौदा नहीं मिटाया जा सकता–

अब तो चश्मा फूट निकला शोर पैदा हो गया।
बंध क्या बांधेगा अब नाला तो दरिया हो गया।।

दरबान – महाराज की जय हो। उलूक, शकुनि का भाई आया है और राजा दुर्योधन की ओर से कुछ संदेश लाया है।

कृष्ण – अन्दर ले आओ। *(दरबान जाता है, कृष्ण स्वत: कहते हैं)* क्या फिर कोई बात बनाना चाहता है या जाल बिछाना चाहता है ?

उलूक – *(दाखिल होकर प्रणाम करता है)* महाराजाधिराज की जय हो।

कृष्ण – कहो उलूक, कैसे आना हुआ ?

उलूक – महाराज दुर्योधन की ओर से सदेश लाया हूं। धर्मराज को समझाने आया हूं कि प्रजा का लहू न बहाये। जो कुछ उनको मिल चुका है, उसी पर संतोष फरमावें। *(चिठ्ठी देता है)*

युधिष्ठिर – *(चिठ्ठी लेकर कृष्ण को देता है)* महाराज लीजिये। पढकर कृतज्ञ कीजिये। कदाचित् सधि का संदेश हो और अत्याचार से बचने का उपदेश हो।

कृष्ण – *(चिठ्ठी खोलकर पढ़ते हैं)* पाण्डवराज! नमस्ते। तुम मूर्खतावश जूआ खेला, वन-वन मारे-मारे फिरे, क्षत्रियत्व को त्याग दिया। इसलिये द्रौपदी का अपमान हुआ। वनवास जाते हुए दु शासन के वचनों का प्रहार हुआ। भीमसेन ने पराये टुकडो पर पेट पाला। तुमने विराट की दासता को स्वीकारा।

भीम – इसमें कोई दोष नहीं।

कृष्ण – अर्जुन ने निर्लज्जता दिखाई। चूडी पहनी। नाक छिदवाई, नाचा-गाया। मर्द, हिंजडा बनकर नखरा दिखलाया। राजा विराट के दासों मे नाम लिखवाया। वंश पर धब्बा लगाया। ऐसे कुल-कंलक को कभी राज नहीं मिल सकता।

अर्जुन – हां, बिना गांडीव अब कोई फैसला नहीं कर सकता।

कृष्ण – श्रीकृष्ण का यदि आपको घमण्ड है तो वृथा है क्योकि हिंजडे से हिंजडों की मदद नहीं हो सकती। जो मर्दों को छोड नामर्दों का साथ देता है, वो कब किसी की सहायता कर सकता है ?

भीम – आह ! अब नहीं सहा जाता।

कृष्ण – यदि अर्जुन में जान है तो गर्जे नहीं, बरस कर दिखावे। भीम गदा को सम्भाले और वो देखे कि दु शासन का खून पीने के लिए उसकी जंघा तोडता है या स्वयं उसका सिर तोडा जाता है।

भीम – हां, दुष्ट क्यो जल्दी करता है ?

कृष्ण – हम हर तरह तैयार है। लंगोट कस चुके हैं। जिसको दण्ड-बल का घमण्ड हो, अखाडे में आवे। भीष्म और द्रोणाचार्य आदि के बाणो का मजा चख जावे।

अर्जुन – अब तो गांडीव की शरण लेनी ही पडेगी।

कृष्ण – परन्तु याद रहे कि सिहों के आगे गीदडों का दाव नहीं, बाजो पर कबूतरों के आक्रमण की ताब नहीं। गीदड-भभकियों से कुछ मिलने वाला नहीं। यदि ज्यादा तृष्णा बढाओगे तो प्राण भी गंवाओगे।

भीम – अब दुर्योधन के पर निकल आये, मरना चाहता है। काल को निमन्त्रण करता है। अब अर्जुन के नांच का पता लग जायेगा। ब्रह्माण्ड को हिला देगा और सूरज को कम्पा देगा और वही नखरा अब शीघ्र ही पृथ्वी पर शांति स्थापित करेगा।

अर्जुन – अब स्वतन्त्र और मांगे हुए टुकडों का पता लग जायेगा और दुनियां देखेगी कि कौन नीचा सिर आयेगा। क्या निर्दयता और अबलाओं पर बलात्कर करना ही क्षत्रिय-धर्म है ? क्या अन्याय और अत्याचार से सुख भोगना ही जीवन का मर्म है ?

नकुल — बस महाराज ! युद्ध के लिये तैयार हो जाइये। दुर्योधन देखेगा कि रण क्षेत्र किसका है और भीम किसके बस का है ?

युधिष्ठिर — *(उलूक से गुस्से के साथ)* यह संदेश है या लडाई करने के लिये उत्तेजित करने का आदेश है ?

कृष्ण — अब समय आ गया—

अब वक्त आ गया है कि हाथों को तुम दिखाओ।
बोया हुआ कटाओ सत् मार्ग को दिखाओ।।

भीम — उलूक ! चले जाओ और दुर्योधन से कह दो कि ग्यारह अक्षोहिणी सेना ने तुझको अन्धा कर दिया है परन्तु तू शीघ्र ही देखेगा कि इसका परिणाम क्या होता है—

मैं देखूं कौन है ऐसा जो अब तुझको छुडाता है।
मैं देखूं कैसे दुःशासन तुझे आकर बचाता है।।

अर्जुन — यह मद गांडीव उतार देगा। भीम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार रण में स्वाद चखा देगा।

कृष्ण — *(स्वतः)* आह ! दुर्योधन तूने मूर्खता की, जो शांतिमय शेरों को जगा दिया। दुर्योधन क्या लड सकता है ? स्वार्थी और अन्यायी भी कभी रण में ठहर सकता है ?

सहदेव — दुर्योधन से कह दो, धर्म-मर्यादा पूर्ण हो चुकी। अब हम तैयार हैं। अब केवल जिह्वा ही नहीं, बदला लेने के लिये हमारे पास पूर्ण हथियार हैं।

भीम — आह ! दुर्योधन !

तेरे पापों की चिनगारी ने जहां फूंका।
यहां फूंका, वहां फूंका, इधर सुलगी उधर फूंका।
तेरे अन्याय की बिजली से गर्क जहां हो गया।
किसी को खुद जला डाला, किसी का खातमा हो गया।
बहुत डंका बजाया तूने स्वेच्छाचारिता का।
समय अब आ गया दुर्भाग्यवश तेरी तबाही का।।

(भीम का जोश में आकर खड़े होना। उलूक का डरते हुए चले जाना, पर्दा गिरता है।)

⊙ ⊙ ⊙

सीन दूसरा

(रणभूमि)

कृष्ण — हे धनञ्जय ! कुरुक्षेत्र के धर्म-क्षेत्र को देख लो। समाने कौरवों की सेना खड़ी है—

देख लो गौर से शत्रु के तरफदारों को।
जांच लो अकल से उस पक्षवालों को।।
आये हैं पाप के बनकर जो मददगार बडे।
अपने पापों ही से मरने को हैं तैयार खड़े।।

अर्जुन – हे देवकीनंदन ! मेरा दिल कंपायमान हो रहा है और धैर्य छूटा जा रहा है–

बुद्धि चक्कर में है, मस्तिष्क फिरा जाता है।
हाथ से मेरे यह गांडीव गिरा जाता है।।

कृष्ण – हे कौन्तेय ! पर्वत के समान दृढ, वज्र के समान सख्त एक क्षत्रिय-पुत्र, और तेरी यह दशा ! तू क्यों घबरा रहा है ? क्यों अधीर होकर कम्पायमान हो रहा है–

क्यों बनते हो आईना-हैरान की सूरत।
क्या देखी नहीं है कभी, मैदान की सूरत ?
लडने से कभी इस तरह योद्धा नहीं डरते।
रणवीर कभी जान की परवाह नहीं करते।

अर्जुन – हे माधव ! मैं लडने से भयभीत नहीं हो रहा हूं, किंतु यह देखकर कि मेरे समक्ष लडने वाले भाई, चाचा, मामा, दादा, गुरु इत्यादि हैं, मोहग्रस्त हो रहा हूं। इनको मारकर स्वर्ग भी बेसूद है। जिनके लिये सुख और संपत्ति की इच्छा होती है, उन्हीं की, उसको प्राप्त करने में आहुति होती है। इनको मारकर क्यों पाप के भागी बनें ? अच्छा है कि राज को छोडकर हम त्यागी बनें–

मारकर इनको मुझे सुख कौनसा मिल जाएगा।
चन्द दिन के वास्ते हां, मर्तबा मिल जाएगा।।
इनमें दिखाई कोई गुरुजन, बाप का भी बाप है।
मारकर इनको जो सुख भोगूं तो भीषण पाप है।।

कृष्ण – हे गांडीवधारी ! यह कैसा उल्टा विचार है ? रणक्षेत्र में छत्री का मोह धिक्कार है।

अर्जुन – हे ऋषिकेश ! तुम्हीं विचार करो, यह लोग लोभ और मोह से अंधे होकर कुल-हानि से लापरवाह हैं। धर्म-मार्ग से पतित होकर गुमराह हैं। क्या हम भी जानते-बूझते वंश-विनाश का पाप करें ? जान बूझ कर नष्ट होने वाली नौका पर बैठें–

कुल-पुरुषों के मरने से सब धर्म नष्ट हो जाते हैं।
विधवा-महिलाओं के आचार भ्रष्ट हो जाते हैं।।
महिलाओं की स्वच्छंदता से संतान उचित नहीं होती है।
जिससे पूर्वज पितरों की, हे कृष्ण ! बुरी गत होती है।।

कृष्ण – इन बातों से तुम्हारा क्या मतलब ?

अर्जुन – जो कुटिल बुद्धि राज्य के लिये संबंधियों का खून बहाने के लिये तैयार हैं, ऐसे युद्ध करने से मुझे मरना स्वीकार है। मैं लडने से हाथ उठाता हूं और यह गांडीव समर्पण करता हूं। *(गांडीव डाल देता है)*

स्वार्थवश होकर के मैं वंश की हानि करूं ?
मारकर अपनों को क्या अपनी तन-असाई करूं ?
क्या महल सुख का बनाऊं, खून की बुनियाद पर ?
पूर्वजों का यश डुबावे धिक् है उस औलाद पर ।।

कृष्ण – हे वीर अर्जुन ! रणक्षेत्र में यह कायरता कहां से आई ? इस निर्बलता का आदि बदनामी और अंत रुसवाई है। युद्ध में हिम्मत हारना नपुसंकत्व है और शत्रु का नाश करने वाले छत्री का रणक्षेत्र में लड़कर मरना ही कर्त्तव्य है–

इस तरह तू कायरता कर वंश-हानि से न डर।
पालन कर्त्तव्य में तू मौत से जरा न डर।।

अर्जुन – परन्तु मैं शत्रु-नाशक भीष्म पितामह जैसे नीतिज्ञ और गुरु द्रोणाचार्य जैसे गुरुजनों पर कैसे शस्त्र चलाऊं ? इन पर हाथ उठाने से पहले अच्छा है कि मैं मर जाऊं। इन गुरु और महान् पुरुषों के मारने के पाप से बच जाऊं–

अजब है मोह का नेत्र जो बुद्धि चक्कर खाती है।
समझ में कुछ नहीं आता यह किस रस्ते चलाती है।
बचाओ मोह से स्वामी शरण तुम्हारी मैं आया हूं।
करो उद्धार मेरा मोह ममता का सताया हूं।।

कृष्ण – हे पार्थ ! क्यों मिथ्या सोच करता है ? क्यों वृथा संकोच करता है ? मुझ में तुझमें और इनमें एक ही आत्मा का प्रकाश है। यह पार्थिव शरीर मायावी है। इसमें केवल चेतन का वास है। हर इक शरीर नाशवान है, परन्तु एक आत्मा ही नित्य है–

हर मुसाफिर आत्मा है और देह निवास स्थान है,
आत्मा अविनाशी है जो बसूरत मेहमान है।
झूठ की हस्ती नहीं और सच फना होता नहीं,
इसलिये ज्ञानी कभी दु:ख से भी घबराता नहीं।

अर्जुन – क्या मेरा मोह वृथा है ? कहिये, मुझे आपकी बातें प्रिय मालूम होती हैं–

आत्मा परमात्मा का ज्ञान मुझको दीजिये,
ब्रह्म के अभ्यास का वरदान मुझको दीजिये।

कृष्ण – हे सखे ! आत्मा नाशवान नहीं। यह जन्म-मरण के बंधन में नहीं आता। न यह मरता है, न मारता है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपडे उतार नये पहन लेता है, उसी प्रकार आत्मा नये शरीर के लिये पुराने शरीर को छोड देता है। इस नित्य-अनित्य के भेद को जान ले और ज्ञान और गम्भीरता से इसे अविनाशी मानले, समझले–

तू किसी इन्सान की हस्ती को मिटा सकता नहीं।
आत्मा को खाक में कोई मिला सकता नहीं।।
मारने मरने की जो शंका कभी करता नहीं।
वो कभी जल्लाद के हथियार से डरता नहीं।।

अर्जुन – हे केशव ! मैं अपनी मूर्खतावश आज तक इसको नाशवान जानता था। अज्ञानवश इस नित्य को अनित्य मानता था–

वही परमात्मा है इक जो कि जारवानी है,
सुना करता था मैं लोगों से यह इन्सान फानी है।

कृष्ण – हे महाबाहु !

जो पैदा हुआ, वो अन्त को मर जाएगा,
जो यहां आया वो इक दिन कूच ही कर जाएगा।

अर्जुन – हे यदुनाथ ! जिस प्रकार बीज में शाख, फल-फूल आदि सूक्ष्म रीति से मौजूद रहते हैं और बोने से प्रगट होते हैं, इसी प्रकार आपके ज्ञान-उपदेश में अनेक अर्थ सुनने से मेरी ज्ञान की प्यास बुझी।

कृष्ण – हे कुलाधीश। कर्त्तव्य से मुंह न मोडना, धर्म-युद्ध से बढकर क्षत्रिय के लिये उच्च कर्म नहीं। रणभूमि स्वर्ग का खुला हुआ द्वार है। भाग्यशाली क्षत्रिय के अतिरिक्त दूसरे को यह मौका मिलना दुश्वार है। यदि यह धर्म-युद्ध, जिसका

सत्य पर आधार है, न करेगा तो अपने कर्त्तव्य पालन से च्युत हो जायगा। यश और कीर्ति को गंवाकर जग के सामने शर्मसार होगा–

आन से बढकर के दुनियां में कोई वस्तु नहीं।
किसलिये फिर चाहता ऐसा पदार्थ तू नहीं।।
युद्ध क्षत्रिय के लिए एक पंथ और दो काज है।
मर गये तो स्वर्ग है, जीते रहे तो राज है।।

अर्जुन – हे कस-निकंदन ! आपके ये कमल नयन ब्रह्म-विद्या के रोशन दीपक हैं–

कुछ तसल्ली हो रही है ज्ञान के संदेश से,
खुल रही हैं मेरी आंखें आपके उपदेश से।

कृष्ण – हे अर्जुन ! जब तेरी बुद्धि अज्ञान और अविद्या की दल-दल से निकल आयेगी, जब तेरी अशाति शाति में बदल जायेगी। बुद्धि ध्यान मे जम जायेगी तो फिर शका न होने पायेगी, कारण कि मनुष्य इन्द्रियों के जाल मे भटक रहा है और अहंकार की अंधेरी रात्रि में लोभ और मोह से सर पटक रहा है। जब ज्ञान का सूर्य अज्ञान और अन्धकार को मिटायेगा और अपने असली स्वरूप को पहचानेगा तो हर किसी को पथ-दर्शक न बनायेगा–

हटाकर सब तरफ से ध्यान जब मन में लगायेगा।
तो अपनी जात का प्रकाश फिर दृष्टि मे आयेगा।।
जब अपनी जात का इस तरह पूर्ण ज्ञान होवेगा।
उसी हालत का असली नाम ही निर्वाण होवेगा।।

अर्जुन – हे यदुकुलतिलक ! स्थिर बुद्धि वाले और सुरति को एकत्र करने वाले ! मनुष्य की क्या पहचान है ? क्या ऐसा मनुष्य ही सच्चा विद्वान् है ?

कृष्ण – हा, जो मनुष्य अपनी इन्द्रियो को कछुए की भांति सिकोड लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है अथवा जब आदमी अपनी इच्छाओं से आजाद हो जाता है तो अपनी जात मे आनन्द पाता है। इसलिये है अर्जुन, तू भी इच्छाओ को छोड दे, इन्द्रियों का मोह छोड दे, कारण कि उनके सबध से क्रोध और क्रोध से अज्ञान, अज्ञान से मूर्खता पैदा होती है और मूर्खता से बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट हो जाने से मनुष्य पतित हो जाता है–

इसलिये तू ख्वाहिशो से अपना नाता तोड दे।
मोह और माया से तू सम्बन्ध रखना छोड दे।।
छूट जाएगा तू जब इन इन्द्रियों के जाल से ।
फिर न भय तुझको रहेगा मोह रूपी काल से।।

अर्जुन – तो क्या इन्द्रियों के जाल से छूटकर दुनियां से अलग हो जाये ? सांसारिक व्यौहारों को त्याग कर ब्रह्म प्राप्ति के लिये वनों में जाये, कारण कि–

रहे है ताप मे पानी तो वह निश्चय उबलता है।
समीप अग्नि के रहने से अवश्य पारा उछलता है।।
रहेगा गर तू दुनियां में तो ख्वाहिश भी अवश्य होगी।
छोडोगे मोह-मद यदि तो दुनियां तेरे वश होगी।।

कृष्ण – हमारे कहने का यह अर्थ नहीं कि मनुष्य कर्म-बंधन को तोड दे या जिन कर्मों से परोपकार हो, उनको छोड दे। वशिष्ठ और जनक आदि की भांति निष्काम सेवा करो और कमल की तरह जल मे रहते हुए जल से अलहदा रहो–

रखो विश्वास ईश्वर पर करो तुम काम दुनिया का।
रहो दुनिया में लेकिन छोड दो आराम दुनियां का।।
कर्म करते रहो लेकिन नतीजे से न मतलब हो।
तुम्हारा काम दुनियां मे हर इक निष्काम कर्तब हो।।

अर्जुन – तो क्या आत्मस्थिति के लिये संसार-त्याग की आवश्यकता नहीं ?

कृष्ण – दुनियां का त्याग नहीं हो सकता। शरीर से छूटकर वैराग नहीं हो सकता। परन्तु केवल ब्रह्म-विद्या द्वारा त्याग ही सच्चा त्याग कहलाता है–

न मोहवश मुंडवाने से होता है कोई संन्यासी,
न दिल जब तक रंगे कपडों से आ सकती है उदासी।

अर्जुन – हे पुरुषोतम ! जो इच्छा होते हुए जगत मे काम कर रहे हैं, वो लोक-संग्रह के लिये दुःख भर रहे हैं।

कृष्ण – हां, यदि कर्म करना छोड़ दो तो अधर्मी हो जाओगे और सृष्टि को कुमार्ग पर ले जाने के उत्तरदाई रहोगे। कर्म ही सच्चा सुख निर्वाण है। कर्म को त्याग करना मूर्खता और अज्ञान है।

अर्जुन – आपके कथनानुसार तो जो नतीजे पर भरोसा नहीं करता है, वही सच्चा सुख निर्वाण है। कर्म को त्याग करना मूर्खता और अज्ञान है।

अर्जुन – आपके कथनानुसार तो जो नतीजे पर भरोसा नहीं करता है, वही सच्चा योगी और संन्यासी कहलाता है। केवल संसार-बंधन तोडने से योगी नहीं बन जाता।

कृष्ण – हां ! जो दिल पर विजयी होता है, वही सुख पाता है, अन्यथा मन ही विनाश के भंवर में फंसा देता है।

अर्जुन – तो वही मनुष्य मोक्ष का अधिकारी है, जो परमानंद में लीन और सच्चा कर्मचारी है।

कृष्ण – जो दुःख-सुख, मान-अपमान समान जानता है, जिसका मन उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं जाता, इन्द्रजाल को देखकर नहीं मचलता; वही शुद्ध और संत है।

अर्जुन – हे यदुराज ! दुनियां में परवरिश होते हुए मनुष्य योगी किस तरह हो सकता है ?

कृष्ण – जिस तरह नट बांस में सुरत लगाता है, स्त्री गागर में ध्यान रखकर सखियों में बाते बनाती है–

पावो से रस्ते चलो और हो सीरत भगवान में,
हाथ तो हो काम में लेकिन रहे दिल ध्यान में।

अर्जुन – हे ऋषिकेश ! आपके ज्ञान से मेरा मोह दूर हुआ, हृदय आनंद में लहरा उठा। अब कृपा करके नारद आदि ने जिस रूप का वर्णन किया है, उसको मुझे दिखलाइये और मेरा मोह मिटाइये–

सबके कर्त्ता आप हैं और ज्ञान के भण्डार हैं,
आप सचमुच ईश्वर हैं और मनुज अवतार हैं।

कृष्ण – हां, मैं कर्त्तव्य-कर्मयोग और याग हूं। जल, वायु, पृथ्वी और आग हूं। शरीर में प्राण, सर्वव्यापी और सर्व शक्तिमान हूं। यह जो कुछ देख रहे हो, यह सब मेरा ही उपकार है। जो कुछ देख रहे हो, यह सब मेरे ही आधार है।

अर्जुन – आपकी दया से मुझे दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो गई और आपके विराट स्वरूप का ज्ञान हो गया–

तुम्हारे नयन-सूरज की तरह जगमगाते हैं,
तुम्हारे बाहुबल ही सारी सृष्टि को चलाते हैं।

कृष्ण – यह रूप केवल दिव्य-दृष्टि से ही देखा जा सकता है–

रूप देखे यह मेरा ऐसा किसे अधिकार है,
यह तेरा हिस्सा है अर्जुन ! तुझपे मेरा प्यार है।

अर्जुन – *(भयभीत होकर)* हैं ! यह क्या ? भीष्म, द्रोण आदि तेजी के साथ तुम्हारे दांतों में क्यों घुसे जाते हैं ? कर्ण, विकर्ण आदि पिसे हुए क्यों नजर आते हैं ? जिस तरह पतंग दीपक पर वार करते हैं, वैसे ही यह लोग मरने के लिए क्यों बढ़ते हैं ? इसका क्या संबंध है–

वो सूरत जिसके इक रौंये में मैं विश्राम करता हूं,
बस ऐसी तेजमयी मूरत को मैं प्रणाम करता हूं। *(फोकस)*

कृष्ण – हे धनुर्धर ! मैं विश्व का काल-रूप हूं। यदि तू मोहवश न लडेगा तो भी यह सेना जो दृष्टिगोचर हो रही है, अवश्य मरेगी। इनको मारने की आवश्यकता नहीं। तू केवल नाम मात्र है, यह अपने पाप से खुद मरे हुए हैं। यश को प्राप्त कर, शत्रुओं को नीचा दिखा और द्रोण आदि की मौत का नाममात्र का कारण बन। राज को प्राप्त कर, आनंद उठा–

धनुष तुझको धनुर्धर की तरह अब उठाना होगा,
इन्हें मरना है लाजिम और तुझको मारना होगा।

अर्जुन – हे त्रिलोकीनाथ ! मैं नमस्कार करता हूं। मेरा भ्रम आज दूर हुआ–

अब तक समझा था, जिसको देवकी का लाल है,
गोपियों में गोप है गऊ धन में जो गोपाल है।
जिसको जाना देवकी-वसुदेव की संतान है,
आज जाना वो ही भगवान सर्व शक्तिमान् है।
तुम्हें भगवान मैं वंशी बजैया ही समझता था,
तुम्हे अज्ञानवश अब तक कन्हैया ही समझता था।

कृष्ण – *(तहकमाना लहजे में)*

क्या अभी तक दिल के आगे मोह की दीवार है,
युद्ध करने से अभी तक क्या तुझे इन्कार है।
अब बदल दे ध्यान को और देख दुनियां की तरफ,
अब कन्हैया फिर वही तेरा पुराना यार है।

अर्जुन – हे भगवन्, क्षमा करो, मेरा अज्ञान दूर हुआ।

कृष्ण – तू अब समस्त शंकाओं को त्याग, मेरी शरण में आ। जो कुछ मैं कहूं, उसे तू बजा ला–

कर्म करने मे हमेशा धर्म का ही ध्यान कर,
कर्म की दे आहुती तू यज्ञ मुझको जानकर।

अर्जुन – *(स्तुति करता है)* हे देव ! आपकी आज्ञा के आगे सर नवाता हूं, गांडीव उठाता हूं। अपना शंख बजाइये। मैं युद्ध को तैयार हूं।

(शंख बजाता है, दोनों तरफ की सेनाएं लड़ती दिखाई देती हैं। लोग कट-कट कर गिरते है। दुर्योधन भागता दिखाई देता है। तबला बजता है। सीन गिर जाता है।)

⊙ ⊙ ⊙

सीन तीसरा

(भीम और द्रौपदी का बातें करते दिखाई देना)

द्रौपदी – क्या सभा-मंडप की प्रतिज्ञा भूल गये ? वो ओजस्वी शब्द भूल गये ? भीष्म और कर्ण आदि मौत के घाट उतर गये। बड़े-बड़े महारथी रणक्षेत्र में दुनियां से गुजर गये, परन्तु–

जी रहा पापी अभी जी को जलाने के लिये,
तुम गदाधारी हुए फिर किस जमाने के लिये ?
गर न काम आई गदा बदला चुकाने के लिये,
फिर भला यह क्या है, चूल्हे मे जलाने के लिये।।

भीम – नहीं, नहीं प्रतिज्ञा नहीं भूल सकता। अपनी निर्बलता कबूल नहीं कर सकता–

तेरा ठण्डा हो कलेजा, वक्त वो आने को है,
नाम कौरव-कुल का अब दुनियां से मिट जाने को है।
भीष्म और द्रोण आदि यह सब वीर दुनियां से गये,
दुष्ट दुर्योधन को भी अब यह गदा खाने को है।

द्रौपदी – मर्द वो हैं, जो धर्म पर जान देते हैं, आन पर प्राण देते हैं–

मर्द रखते हैं हमेशा आन अपनी जात की,
मर्द को होती है लज्जा सर्वदा ही बात की।
मर्द इज्जत के लिये ही खेलते हैं जान पर,
मर्द वो ही सच्चा, मिटता है अपनी आन पर।
मर्द है असली वही जो कौल से फिरता नहीं,
आदमियत के कभी दर्जे से वो गिरता नहीं।

भीम – सती ! वृथा क्यों दोष लगाती है–

मर्द हूं तो कौल से अपने मैं फिरने का नहीं,
मैं मनुष्यता के कभी दर्जे से गिरने का नहीं।

द्रौपदी – दोष नहीं लगाती, सत्य कहकर याद दिलाती हूं।

भीम – द्रौपदी ! क्या मैं धर्म से पतित हो गया ?

द्रौपदी – नहीं। किंतु तुम्हें विचारना चाहिये कि पापी दुःशासन के हाथों से भ्रष्ट हुए बालों को चौदह साल से लिये फिर रही हूं। अपमान से भरी हुई घड़ियों को एक-एक साल करके गिन रही हूं।

भीम – ओह ! अब नहीं सहा जाता। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आज यदि इस गदा से पापी दुर्योधन को न मारा तो लहू की धारा में मेरा सिर बहता होगा–

किस तरह होगी प्रतिज्ञा पूर्ण मैं बतलाऊंगा,
तोडकर पापी की जंघा खून को पी जाऊंगा।

युधिष्ठिर – *(दाखिल होकर)* पापी को मारने का साहस अगर है तो देखो, सामने के तालाब में छुपा है। *(फ्लाट का फटना, तालाब का दिखाई देना)*

भीम – ओ पापात्मा ! निकल, बाहर आ । क्षत्री-कुल कलंकित करता है। तमाम बंधुओं को कटाकर क्यों अपनी जान के लिये डरता है ? धिक् है, ऐसे जीवन पर जो कर्त्तव्यहीन होकर छुपे–

जल में क्या वो मान-मर्यादा सभी कुछ बह गई ?
मुंह छुपाने के लिये, पानी की चादर रह गई।
छोडता है किसलिये तू दुष्ट छत्री धर्म को ?
डूबने को बस है चुल्लू भर एक ही बेशर्म को।

दुर्योधन – *(जोश से निकलता है)* अरे कायर, मैं क्षत्री–धर्म से पतित होकर नहीं आया किंतु कल की लडाई का खून धोने के लिये इस सरोवर में नहाया हूं। तू क्यों वृथा घमण्ड करता है। अपशब्द मुंह से निकाल मुझे क्रोधित करता है।

है वदन जख्मी मगर है जोर बाहो में अभी,
पांच काटे हैं, खटकते इन निगाहो मे अभी।
मोह क्षत्री को कभी होता नहीं है जान का,
क्या समझता है, मुझे भी चोर तू मैदान का ?

भीम – ओह ! पामर, बता तेरे चापलूस और खुशामदी कहा हैं ? तुम पर झूठी जान निसार करने वाले कहां हैं ? वो कौनसी जंघा है, जिस पर द्रौपदी को बिठाने का विचार था, जिस पर सभा में हाथ मार कर तुझको लडने का अहंकार था–

अब आ गया समय वोह अभिमान तोडने का,
अब वक्त आ गया है वोह जांघ तोडने का ।
कुछ देर के लिये अब सीने पर हाथ रख ले,
अन्याय जो किये हैं, उनका मजा भी चख ले।

दुर्योधन – मुझे मजा चखाने को कौन शक्तिमान है ?

भीम – वो साक्षात् कृष्ण भगवान है, जिसके आदेश को न मानकर तूने अत्याचार किये हैं और स्वच्छंदता मे मगन होकर विलासिता के मजे लिये हैं।

दुर्योधन – मैं अब भी लडने से नहीं डरता परन्तु शर्त यह है कि छत्री-धर्म को मानो, एक-एक करके मैदान मे आओ–

यहीं पर देखले दुनियां, फडकती लाश पांचो की,
अगर इक-इक आओ तो हो निश्चय किर-किरी सब की।

युधिष्ठिर – एक-एक की शर्त करते हुए लज्जा नहीं आती। क्या अकेले अभिमन्यु पर छः महारथी सेना सहित न टूटे थे ? क्या उस समय क्षत्री-धर्म न रहा था या अब नया सीखकर आये हो ? क्या किया जाये, धर्म का पालन है, अन्यथा अभी बतला दिया जाता, अभिमन्यु का बदला चुका लिया जाता।

कृष्ण – नहीं, सबका एक साथ लडना ठीक नहीं किंतु केवल भीम को लडना चाहिये।

भीम – तो अच्छा ले, पहले मेरे से ही निपट ले।

दुर्योधन – गरजने से कुछ फायदा नहीं। रण में लडने का यह कायदा नहीं। यदि बहादुर हो तो रणक्षेत्र में आओ। कुछ करतब करके दिखलाओ।

भीम – *(सामने बढकर)* आओ ! अभिमान की साक्षात् मूर्ति, आओ। मेरी प्रतिज्ञा-पूर्ति के सामान आओ–

याद आई है प्रतिज्ञा है कठिन बचना तेरा।
हो गये बरसो मगर भूला नहीं कथना तेरा।
मुष्टिका से तोड़कर रखूंगा अब सीना तेरा।
हो चुका संग्राम बाकी है लहू पीना तेरा।
द्रौपदी की आंख के आसू न सूखेंगे कभी।
खाक ओ खून में देखेगी तुझको न जब तक बेकसी।

(लड़ाई शुरू होती है। भीम को कमजोर देखकर कृष्णजी कहते हैं)

कृष्ण – *(स्वतः धीरे से)* दुर्योधन बलवान है। इस पर गदा का असर न होगा। भीम का घमण्ड काम न देगा। *(कुछ जोर से)* भीम अंधा है। प्रतिज्ञा को भूल गया है। बिना याद किये जोश नहीं आ सकता। दुर्योधन पर विजय नहीं पा सकता। *(भीम कृष्ण की बातें सुनकर रान पर गदा मारता है। दुर्योधन गिर जाता है।)*

भीम – अरे दुष्ट गदा बनकर, द्रौपदी तेरी रान पर बैठी है। *(मुष्टिका दिखाकर)*
इसको छाती से लगा, है द्रौपदी यह मुष्टिका,
तोड दे ऐ मुष्टिका तू भी हृदय अब दुष्ट का।

युधिष्ठिर – *(गहरी सांस लेकर)* आह ! इसी दिन के लिये अत्याचार किया था। क्या इसी दिन के लिए अधर्म का सहारा लिया था ?
कोई भी आता नहीं है, अन्त के इस काल मे,
धर्म बिना अब कोई साथी है तेरा इस हाल में ?

दुःशासन – *(दाखिल होकर)*–
धिक्कार है, ऐसी प्रतिज्ञा-पूर्ति पर,
धिक्कार है ऐसी विकराल मूर्ति पर।

भीम – धन्य है ! हे ईश्वर तू धन्य है ! *(द्रौपदी की याद करके)*
आ सती अब शीघ्र आ किस्मत अभी बलवान है,
खुद शिकारी के यहां आखेट आप मेहमान है।
थी जो कुछ हसरत मेरी तेरा जो कुछ अरमान है,
आ गया थाली मे भोजन मेहरबां भगवान है।

दुःशासन – अरे घमण्डी मुंहजोर ! जो अन्यायी है, वही ऐसी विजय पर इतराता है। निर्लज्ज नीच, क्या गदा-युद्ध करने वाला कभी नाभि के नीचे चोट पहुंचाता है ?

भीम – यह तो मेरी प्रतिज्ञा थी, किंतु हमारे वस्त्रों में नाग छोडना, भोजन में विष मिलाना, लाक्षागृह में सुलाकर आग लगाना, जीवित को नदी में बहाना, क्या लज्जास्पद न था ? क्या यह कर्म क्षत्री-धर्म के अनुकूल था ?

दुःशासन – परन्तु रुस्तमी युद्ध मे.........।

भीम – *(बात काटकर, हाथ को झटका देकर)* ठहर जा, ठहर जा, दो-चार पल ठहर जा।
किस तरह करूं पृथ्वी मैं लाल तेरे खून से,
सींचता द्रौपदी के बाल तेरे खून से।

(द्रौपदी आती है और उसके बाल उसके खून से भिगोये जाते हैं)

पाप आज धरती पै फिण्डा हो गया,
बाद बरसो के कलेजा आज ठण्डा हो गया।

द्रौपदी – *(खड़ी होकर)* सत्य है। दीन-दुखी की कभी आह खाली नहीं जाती। कभी न कभी अवश्य रंग लाती है। परमात्मा के यहां देर है, पर अन्धेर नहीं है–

वही फलता है आखिर धर्म का जो काम होता है,
हमेशा पाप का आखिर बुरा अंजाम होता है।

(तबले का बजना और पर्दे का गिरना)

⊙ ⊙ ⊙

सीन चौथा

(अश्वत्थामा का पांच सिर लिये हुये आना)

अश्वत्थामा– मिल गया, मिल गया, पिता की मौत का बदला मिल गया। उनकी इक-इक बूंद के बदले इक-इक लाश तडफ रही है–

मिटा के हरित पांडवो की मुराद दिल की है मिल पाई,
जो आग सीने में जल रही थी लहू से पाचो की है बुझाई।

परन्तु, हा ! धोखा हुआ। पांडवो के बदले पांडव-पुत्रों का नाश हुआ। यद्यपि दुर्योधन को कोई शांति नहीं हुई तथापि मुझे संतोष है कि पाडव कुल का नाश हुआ। अब केवल उत्तरा गर्भवती है सो उसका भी उपाय सोच लिया है। अच्छा, अब चलना चाहिये। व्यासजी क्या कहते हैं ?
(जाता है)

(दूसरी ओर से युधिष्ठिर और भीम आते हैं)

युधिष्ठिर – तुम्हे विश्वास है कि वह अश्वत्थामा ही था !

भीम – हां, क्योंकि द्रौपदी ने अच्छी तरह पहचान लिया था।

युधिष्ठिर – तो अब क्या करना चाहिये ?

भीम – सती द्रौपदी ने मुझे आज्ञा दी है कि उससे बदला लेना चाहिये।

युधिष्ठिर – नहीं, अव्वल तो वह ब्राह्मण-पुत्र है, दूसरे, गुरु का बेटा है। इसलिये उसका वध न करना चाहिये।

सहदेव – मेरे विचार मे उससे मणि ले लेनी चाहिये और मुक्त कर देना चाहिये।

भीम – परन्तु अब उस कायर का पता नहीं लगता। वह वीर नहीं है, कायरतावश छिपता फिरता है।

अश्वत्थामा– *(गुस्से के साथ दाखिल होकर)* झूठ है। मैंने कायरता कभी नहीं की। न पहचानते हो तो पहचान-लो, यह वही अश्वत्थामा है, जिसने तुम्हारे पुत्रों के मस्तकों से पंचमुखी और रक्त की माला बनाई। यह वही अश्वत्थामा है कि जिसने अपनी बर्छी तुम्हारे पुत्रों पर चलाई।

भीम – गुरु के नाम को लजाने वाले, बता कि क्या तूने यह कार्य नीति के अनुसार किया है ?

युधिष्ठिर – आधी रात के समय, जब युद्ध बन्द था, तूने हमारे पुत्रों के सर काटे, यह गुरु महाराज ने कब उपदेश किया था ?

अश्वत्थामा– अरे अन्यायियो ! अपने अत्याचारों पर नहीं लजाते हो। मुझे उपदेश सुनाते हो। क्या पिताजी ने युद्ध में छल और कपट से काम लेने का आदेश किया था ? *(युधिष्ठिर की तरफ इशारा करके)* और तू जो धर्मराज, धर्मावतार कहलाता है, किस मुंह से मुझे धिक्कारता है ? क्या तूने मेरे पिता के साथ धर्मानुसार कार्य किया ? क्या उन्हें छल और कपट से मारने का प्रबन्ध नहीं किया ?

भीम – नहीं, धर्मराज ने कोई अधर्म नहीं किया।

अश्वत्थामा– पितामह के पश्चात् पिताजी ने सेनापति के पद पर आरूढ होकर जब समर-भूमि में तुम्हारी सेना को व्याकुल किया, उस समय विजय के लोभ मे धर्मराज ने सत्यवक्ता होते हुए भी झूठ बोला। पिताजी को धोखा दिया। अश्वत्थामा नामक हाथी मारकर मेरे मरने का विश्वास दिला दिया। स्पष्ट शोर न मचाया कि अश्वत्थामा हाथी मरा। पिताजी ने पुत्र-शोक में हथियार डाल दिये। धृष्टद्युम्न ने इस पर भी अपना शस्त्र पिताजी के हृदय में उतार दिया, क्या यह अन्याय न था ?

भीम – धर्मराज ने तुम्हारे मरने का विश्वास कभी नहीं दिलाया परन्तु तूने गुरु-पुत्र होते हुए, सोते हुए वीरो के कलेजे में शस्त्र उतार दिया। क्या इसको वीरता कहते हैं ?

अश्वत्थामा– नहीं, मैंने ऐसा नीच कर्म कदापि नहीं किया। मैंने जिसे मारा है, जगा-जगा कर मारा है।

युधिष्ठिर – इसका बदला तो वही था कि तुम्हारा भी सर लिया जाता परन्तु गुरु के पुत्र हो, इसलिये तुमको मुक्त किया जाता है।

भीम – परन्तु तुम्हारे मस्तक की मणि को निकाल लिया जाता है, जो इसलिये कि जब तक जीवित रहो, अपने किये पर पछताओ।

अश्वत्थामा– मैं अपना कार्य कर चुका। अब मणि तो क्या, प्राणों की भी परवाह नहीं–

आस पूरी हो गई मन लीन है बैराग में,
दुःख क्या होगा मुझे अब इस मणि के त्याग मे ?

यह लो, मैं मणि स्वयं दे देता हूं।

भीम – जा, गुरु के बालक, जा। तेरे प्राण न लूंगा।

(अश्वत्थामा मणि देकर चला जाता है और दूसरी ओर से धृतराष्ट्र को लिये हुए एक दास आता है)

संजय – श्रीमान् ! देखिये, पाण्डव बन्धु यहीं खडे हैं।

धृतराष्ट्र – *(खुद ब खुद)* मेरे पुत्र दुर्योधन का लहू पीने वाले पापात्मा की जान लूंगा। छाती से भेंटकर उसके प्राण लूंगा। *(प्रगट)* कहां है बहादुर भीमसेन, कहां है ? आज उसने बहुत अच्छा काम किया है। एक पापात्मा का काम तमाम किया है।

भीम – बाबाजी ! नमस्कार।

धृतराष्ट्र – आओ राजकुमार–

आओ कि मैं हृदय के सब अरमान निकाल लूं,
मैं आपसे प्रसन्न हूं, छाती से लगा लूं।

(भीम मिलना चाहता है। कृष्ण भीम को पीछे हटा कर पुतला आगे कर देते हैं। धृतराष्ट्र उसको भेंटकर भींच डालते हैं)

कृष्ण – राजन् ! क्या अब भी मोह नहीं छूटा ? सर्वनाश होने पर भी अनीति-अधर्म का विचार नहीं छूटा। विदुरजी की नीति, उपदेश से अंतरात्मा में प्रकाश नहीं हुआ। आपने भीम को मारना चाहा परन्तु दैवयोग से अभी संसार मे उसका आब व दाना है। तुम्हारी यह अनीति संसार में प्रगट होगी और तुमको पश्चाताप करना होगा–

दिल में अब भी अनीति तुमने क्यों धारी हुई,
वृद्ध अवस्था में भी है दिल की मति मारी हुई।
मोह से बाज आओ अब माया से प्रीति छोड दो,
बाल पके हो गये अब तो अनीति छोड दो।

विदुर – क्यो भाई ! श्रीकृष्ण क्या कहते हैं ? क्या जिस ईर्ष्या ने कुल का नाश किया, अभी तक तुमने उसको जुदा न किया। पुत्र, मित्र और बन्धुओं के वियोग पर भी द्वेष का विकार न गया। सब कुछ नष्ट होने पर भी अहकार न गया–

अब तो छुटकारा कर लो मोह के इस जाल से,
कुछ तो शिक्षा सीख लो अन्याय के परिणाम से।

धृतराष्ट्र – हां सत्य है, मैंने मोहवश हो लोक और परलोक को बिगाड लिया। द्वेष के प्रबल राक्षस ने मेरी बुद्धि को पछाड लिया। यह मनुष्य जन्म बेकार हुआ। न प्रजा की रक्षा हुई, न अपना ही निस्तार हुआ। जन्म वृथा ही गुमाया। अमूल्य रत्नों को कौडियों के व्यापार मे लगाया, कि आज मैं पछताया और इस झूठे संसार को छोडने का विचार आया। अब तपस्या करूंगा और शेष जीवन वन में विताऊंगा–

क्योंकि सारी उम्र गोते पाप मे खाता रहा,
जन्म दुर्लभ था, मगर ममता में ही जीता रहा।

युधिष्ठिर – नहीं, आप पहले की तरह राजसिंहासन की शोभा बढाइये। हम आपकी सेवा करेंगे। आप केवल हमें आज्ञा कीजिये।

धृतराष्ट्र – नहीं, अब एक घडी के लिये भी गृहस्थ में रहने का लोभ नहीं। वानप्रस्थ के लिये विदा कीजिये। *(कृष्ण से)* आप भी आशीर्वाद दीजिये।

कृष्ण – धर्मराज ! अब इनके लिये वन, तुम्हारे लिये गृहस्थ है। धर्मानुसार रहो। गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ है।

विदुर – परन्तु मैंने धर्मान्दोलन मंत्री पद के लिये नहीं किया। स्वार्थवश अपना समय राज उद्धार मे नहीं दिया। अब मेरी इच्छा है–

जगह एकान्त हो और वास को पर्वत हिमाला हो,
कमण्डल पात्र भूषण माल बिस्तर मृगछाला हो।

सूरसेन – मैं भी साथ चलूंगा। पितृसेवा कर कृतज्ञ होऊंगा।

दिखाया भाव अब तक मित्र-भक्ति का,
दिखाऊंगा चमत्कार अब जगत को पितृ-भक्ति का।

विदुर – नहीं, तुम्हारी उम्र वन जाने की नहीं किंतु अभी देश की सेवा करो।

देश सेवा में जन्म अपना तपा दो बेटा,
शक्तियां जान की सेवा मे लगा दो बेटा।
वास्ते धर्म के यदि प्राण भी मांगे कोई,
तो यह कर्तव्य है सिर अपना कटा दो बेटा।

सूरसेन – जो आज्ञा। आपकी इच्छा पूर्ण होगी–
करूंगा गृहस्थ मे रहकर सदा उपकार भाइयों का,
करूंगा तन व मन-धन से सदा उद्धार भाइयों का।
है छोड़ा आपने जिस काम को पूर्ण मैं करूगा,
मैं देश और जाति की सेवा मे ही सर दूगा।

कृष्ण – अच्छा ! आप भी वानप्रस्थ लीजिये और महाराज धृतराष्ट्र के साथ ही वन-गमन को प्रस्तुत हूजिये।

विदुर – हां, मेरी भी यही इच्छा है। अब आप लोग आज्ञा दीजिये।

धृतराष्ट्र – प्रणाम। महात्मा को प्रणाम।
(कृष्ण और युधिष्ठिर को प्रणाम करते हैं। एक तरफ धृतराष्ट्र आदि वन को जाते हैं। दूसरी और युधिष्ठिर आदि रवाना हो जाते हैं। सीन बदलता है)
(इतना नाटक खेलने के बाद रंगमंच पर इस सीन में एक बोर्ड गिराया जाना चाहिये, जिसमें निम्न वाक्य लिखा हुआ हो- 'महाभारत के अंत में' इस बोर्ड के उठाने के बाद अगला दरबार होगा, जिसमें राजा परीक्षित को राजतिलक दिया जाएगा।)

⊙ ⊙ ⊙

सीन पाँचवाँ

(दरबार लगा है)

दरबारी1 – गया ग्रीष्म अन्याय का हुआ पाप का अंत।
धर्मराज वन आ गया फिर एकबार बसन्त।।

दरबारी2 – जिस घर में थी इक दिन दुख की काली-रात,।
उदय हो गया उस जगह सुख का स्वच्छ प्रभात।।

युधिष्ठिर – हे वासुदेव ! तुम धन्य हो। तुम्हारी ही असीम कृपा से हम इस दुख-सागर संसार को पार करने में समर्थ हुए हैं। तुम्हारी ही दया से आज इस पुण्य भूमि के भाग्य उदय हुए हैं।

अर्जुन – हां, इन्हीं की असीम कृपा से आज पाप का अंत हुआ और पुण्य का बादल बरसने को है। धर्मराज का राज्य, जिस पर प्रजा की दृष्टि मुदत से पड रही थी, आज स्थापित होने को है–
दृश्य जो था पाप का वह सब बदल जाने को है।
राज्य दुर्योधन का जा, अब धर्मराज्य आने को है।।

भीम – हां, भ्राताजी को अब गद्दी पर बैठकर न्याय करना चाहिये और प्रजा की कामना पूर्ण करनी चाहिये।

युधिष्ठिर – हे वासुदेव ! मैं वृद्ध हो गया हूं। मेरी आयु अब अपनी आंखों से पुत्र आदि को सुखी देखने की है, राज्य का भार उठाने की नहीं है। अब हमको अपने कर्मों का प्रायश्चित करना और वन में जाकर तपस्या करनी चाहिए। मैं राज्य नहीं कर सकता, दुनियां में अब नहीं ठहर सकता। चिरंजीव परीक्षित कुमार को लाओ और उसके शीश पर राज्य–मुकुट धारण कराओ।

(कृष्ण जाकर परीक्षित को लाते हैं)

चिरंजीव परीक्षित, अब तुम भारत का शासन करो। राज्य का भार ले, ईश्वरीय आज्ञाओं का पालन करो।

परीक्षित – आज्ञा तो स्वीकार है परन्तु बड़ो के होते छोटो को शोभा नहीं देता, यह विचार है।

भीम – बडे छोटों के लिये सामग्री एकत्र किया करते हैं। हमने यह राज्य तुम्हारे लिये ही प्राप्त किया है।

अर्जुन – इसलिये हम तुम्हारी वस्तु तुम्हें ही सौंपते हैं। इस ऋण से उऋण होते हैं।

कृष्ण – वीर अभिमन्यु के तुम स्मारक हो और पाण्डव पक्ष की तुम नांक हो। इसलिये हमारी आखे तुम्हारे शीश पर राज-मुकुट देखना चाहती हैं।

परीक्षित – *(कृष्ण से)* क्या आपकी भी यही आज्ञा है ?

कृष्ण – हां, हमारी भी इच्छा है।

परीक्षित – फिर मेरी भी यही प्रार्थना है कि ताज को प्रसाद-रूप प्रदान किया जावे।

युधिष्ठिर – धन्य हो, तुम्हारे अभी से कैसे उच्च विचार हैं ! अच्छा द्वारिकानाथ इसकी भी हठ पूरी कर दीजिये।

अर्जुन – क्योंकि राजमुकुट के प्रधान आप ही हैं। हमारी विजय के साया आप ही हैं। *(राजा परीक्षित के सर पर ताज रखा जाता है)*

सब – जीवो, फूलो-फलो, यह राज्यश्री तुमको सदा शुभ हो।
सदा शुभ हो, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो।।

(ड्राप सीन)

⊛ ⊛ ⊛